सांख्यतत्त्वसुबोधिनी सटीक

जिसमें

ईश्वर कृष्णाचार्य ने सत्तर कारिकाओं में साठ तत्त्वों का कथन किया है ॥

उसीका

टीका सरल मध्यदेशीय भाषामें बाबू ज़ालिमसिंह निवासी ग्राम अकबरपुर ज़िला फ़ैजाबाद हेड पोष्टमाष्टर नैनीतालने गौड़पादाचार्य के भाष्यानुसार रचना किया है ॥

पहिलीवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में छपा ॥

सन् १८९९ ई०

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परमरहस्य गीताशास्त्र का सर्व्व विद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादिगुणसंपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुनको परमअधिकारी जानके हृदयजनित मोहनाशार्थ सब प्रकार अपारसंसारनिस्तारक भगवद्भक्ति मार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्त भगवद्गीता वज्रवत् वेदांत व योगशास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्ता अपनी बुद्धिसे पारनहीं पासक्के तब मन्दबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठन पाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जान सक्के हैं--और यह प्रत्यक्षही है कि जब तक किसी पुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छे प्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इसप्रकार संपूर्ण भारत निवासी श्रीमद्भगवत्पदाब्जरसिक जनोंके चित्तानन्दार्थ व बुद्धि बोधार्थ सन्ततधर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमान् मुंशीनवलकिशोर जी (सी, आई, ई) ने बहुत सा धन व्ययकर फ़र्रुखाबादनिवासि पण्डित उमादत्तजी से इस मनोरंजन वेद वेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तक को श्रीशंकराचार्य्यनिर्मित भाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषा में तिलक रचाय नवलभाष्य आख्यसे प्रभातकालिक कमल सरिस प्रफुल्लित करादिया है कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुषभी जानसक्के हैं ॥

सांख्यतत्त्वसुबोधिनी सटीक।

दोहा ॥

श्रीकपिल महामुनी को, प्रणवौं बारंबार ॥
जगदुद्धारक हेतु जिन, कियो सांख्यपरचार १
ताको शिष्य मुनि आसुरि, पञ्चशिखाताजान ॥
जिनै यह सांख्यतंत्र का, प्रगट कियो विज्ञान २
संप्रदाय तिनमें भयो, ईश कृष्ण जस नाम ॥
छंदआर्या में कियो, सांख्यकारिका ग्राम ३
सांख्यकारिकापर सकल, भाषा करूं बखान ॥
जे अवलोकन अस करैं, मिटै सकल अज्ञान ४
पुरी अयोध्याके निकट, अकबर पुर है ग्राम ॥
जन्मभूमि मम जान तू, जालमसिंहहिनाम ५

प्रथम सृष्टिके आदिकाल में ब्रह्माजी के सात पुत्र महर्षि होते भये तिनके ये नाम हैं सनक १ सनन्दन २ सनातन ३ आसुरि ४ कपिल ५ वोढु ६ पञ्चशिख ७ तिनमें से कपिलजी जन्म सेही सिद्ध थे क्योंकि जन्मकाल सेही धर्म्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य उनके साथही उत्पन्न हुये थे इसी वास्ते वह जन्मसेही सिद्ध कहलाते हैं उन्होंने संसारी लोकों को अविद्यारूपी समुद्रमें डूबते देखकर करुणा करके लोकों के उद्धार के लिये सांख्यशास्त्ररूपी नौका को निर्म्माण किया जिस सांख्यशास्त्ररूपी नौका करके शीघ्रही लोक अविद्यारूपी संसार समुद्रसे पार होकर नित्य सुख जो मोक्ष तिसको प्राप्त होजावैं और वह सांख्य शास्त्र कैसाहै जिसमें पञ्चविंशति तत्त्वोंका ज्ञानही मुख्य मुक्तिका साधन है॥ सो कपिल भगवान्‌जी ने प्रथम पञ्चविंशति तत्त्वों के ज्ञान को आसुरिऋषि जो ब्रह्माजी के पुत्रहैं तिनको उपदेश किया जिस ज्ञान से दुःखत्रय का नाश होजाता है सो कहते हैं॥

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसेत्॥
जटीमुण्डीशिखीवापि मुच्यतेनात्रसंशयः१

पचीस तत्त्वों के ज्ञानवाला पुरुष जिस किसी आश्रम में निवास करताहो, जटीहो याने जटा रखायेहो या मुण्डितहो परमहंस हो अथवा शिखीहो शिखा यज्ञोपवीत को धारण कियेहो वह मुक्त होजाता है इसमें संशय नहीं है और आसुरिमुनिने आगे पञ्चशिखा मुनिको पचीस तत्त्वों के ज्ञानका उपदेश किया आगे पञ्चशिखा शिष्य परंपरा करके ईश्वर कृष्ण श्रेष्ठबुद्धिवाले ऋषि को प्राप्त हुआ उसने आर्य्याछन्दमें ग्रन्थ निर्माण करके इसको प्र-

काश किया जिज्ञासुवों के उद्धारके लिये जो इस ग्रन्थ को पढ़कर धारण करैगा वहभी पञ्चविंशति तत्त्वों के ज्ञानको प्राप्त होकर संसारसागरसे पार होजावैगा इसमें संदेह नहीं है अब ईश्वर कृष्ण करके निर्माणकरी जो आर्य्याछन्दमें कारिका हैं उस पर भाषा टीका करके दुःखत्रय के नाशके वास्ते संसारी जीवोंके उद्धारके लिये और मन्दमतियों के स्वल्प परिश्रम करके पञ्चविंशति तत्त्वों के ज्ञानके निमित्त ग्रन्थको प्रकाश करते हैं ॥

मूल–दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासातदभिघातेहेतौ।
दृष्टेसाऽपार्थाचेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् १॥

अन्वय	पदार्थ
दुःखत्रयाभिघातात् =	अध्यात्मिकादि दुःखत्रय का नाश होने से
तदभिघातके =	तिस दुःखत्रय के नाशक
हेतौ =	हेतु में याने कारण में
जिज्ञासा =	जिज्ञासा याने जानने की इच्छा
कार्या =	करनी चाहिये
दृष्टे =	शंका यदि दृष्ट उपायोंसे दुःखका नाशहोजावै
सा =	तब तो वह जिज्ञासा
ऽपार्था =	व्यर्थ होजावैगी
चेत् न =	इति चेन्न ऐसी शंका मतकर
एकान्तात्यन्ततो =	दृष्ट उपायोंसेदुःखोंका अत्यन्ताभावका

ऽभावात् = अभाव होनेसे ॥

भावार्थ

यदि संसार में दुःख न होता तब सांख्यशास्त्रविषयिणि जिज्ञासा भी किसी को न होती अथवा दुःख तो होता परन्तु उसके दूर करने की इच्छाही न होती इच्छा भी होती परन्तु वह नाश करने को अशक्य होता तब भी जिज्ञासा किसी को न होती क्योंकि जब नाशही नहीं होसक्ता तब केवल जिज्ञासामात्र क्याफल करसक्ती है अथवा दुःख नित्य होता और तिसके नाशके उपायको कोई भी जानता नहीं तब भी जिज्ञासा न होती और अगर दुःख नाश हो सक्ताहै तो शास्त्रविषयक ज्ञान उसके नाशका उपाय है या और कोई सुगम उपाय है यदि सुगम उपाय होता तब भी सांख्य शास्त्रविषयणि जिज्ञासा न होती सो तो नहीं है किन्तु दुःख भी जगत् में है और तिसके दूर करनेकी इच्छा भी सब जीवोंको है यह तो प्रत्यक्षही देखने में आता है इस वास्ते दुःखत्रयके नाश की जिज्ञासा सबको है इसी पर मूलकारिका में कहा है ॥ दुःखत्रयाभिघातादिति ॥ आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैवक इन भेदों करके तीनप्रकारका दुःख संसार में विद्यमान है ॥ तिनमें से आध्यात्मिक दुःख शारीरक और मानस भेद करके दो प्रकारका है दोनों मेंसे वात पित्त कफ की न्यून अधिकतासे जो ज्वरादिक रोग उत्पन्न होते हैं उन करके जो शरीरमें दुःख होताहै उसका नाम शारीरक दुःखहै और प्रियवस्तुके वियोगसे और अप्रिय वस्तु के संयोगसे जो मनमें खेद होताहै उसीका नाम मानस दुःख है शारीरक मानस भेद करके दो प्रकारका आध्यात्मिक दुःख कहदिया अब आधिभौतिक दुःखको दिखाते हैं आधिभौ-

तिक दुःख चारप्रकार का है भूतोंके समुदाय से जो दुःख होवे उस का नाम आधिभौतिक है सो भूतोंका समुदाय जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिजभेद से चार प्रकारका है जरायुज वह कहलाते हैं जो जेरसे उत्पन्न होते हैं मनुष्य पशु मृगादिक यह जरायुज हैं और जो अंडेसे उत्पन्न होतेहैं वह अण्डज हैं पक्षी सर्पादिक ये अण्डेको फोड़कर उत्पन्न होतेहैं इसवास्ते इनका नाम अण्डज है जो पसीने से उत्पन्न होते हैं उनका नाम स्वेदज है जुवां मच्छर खटमलादिक ये स्वेदज कहलाते हैं और जो पृथ्वीको ऊर्ध्व भेदन करके उत्पन्न होते हैं उनका नाम उद्भिज है वृक्ष बेलादिक इनका नाम उद्भिजहै इन चारप्रकार के भूतों के ग्रामसे जो दुःख होता है इसीका नाम आधिभौतिक दुःखहै और देवतों से जो खेद होवै उस दुःखका नाम आधिदैवक है जैसे सूर्य्य चन्द्रमाआदि ग्रहों से और शीत उष्ण वर्षा आदिकोंसे जो जीवों को खेद होता है उसका नाम आधिदैवक है इन तीन प्रकार के दुःखोंका नाश होसक्ता है इसी वास्ते तिन दुःखोंका नाशक जो हेतु है अर्थात् त्रिविधदुःख का नाशक जो सांख्यशास्त्र है तिसकी सब को जिज्ञासा करनी चाहिये॥ प्र०॥ दृष्टेसाऽपार्था॥ यदि दृष्टउपायोंसे दुःख त्रयकानाश होजावे तब तो तुम्हारी सांख्यशास्त्रविषयणि जिज्ञासा व्यर्थ है सो दिखातेहैं आध्यात्मिक दुःख जो शारीरक है तिसकी निवृत्ति तो औषध आदिकों के सेवनसे होजावैगी और मानस दुःखकी निवृत्ति प्रियवस्तुके संयोग और अप्रिय वस्तुके परिहारसे होजा- वैगी और आधिभौतिक दुःखकी निवृत्ति शरीरकी रक्षाके उपायोंसे होजावैगी और आधिदैवक दुःखकी निवृत्ति मणिमंत्रादिकों क- रके होजावैगी पूर्वोक्त सुगम उपायों करके जब कि त्रिविध दुःखकी

निवृत्ति होसक्ती है तब फिर सांख्यशास्त्रविषयणि जिज्ञासा करनी व्यर्थ है ॥ उ० ॥ नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥ दृष्ट उपायोंसे यद्यपि त्रिविध दुःखकी निवृत्ति होसक्ती है तथापि अत्यन्त निवृत्ति नहीं होसक्ती है सो दिखाते हैं शारीरक रोग औषधीके सेवनसे दूर होसक्ता है परन्तु एकबार दूरहोकर भी फिर कालांतर में होजाता है और ऐसा नियम भी नहीं है जो अवश्यही इस औषध के सेवन से इस रोगकी निवृत्ति होजावैगी किन्तु बहुत से औषधी करते करते हार जातेहैं उनके रोगकी निवृत्ति नहीं होतीहै इसी तरह प्रियवस्तु के संयोगसे और अप्रिय वस्तु के परिहार से एकबार मानस दुःखकी निवृत्ति होभी जावैगी परन्तु ऐसा नियम नहीं हो सक्ता जो सदैव प्रियवस्तु का संयोग बनारहै और अप्रियवस्तु का वियोग बनारहे किन्तु कभी संयोग और कभी वियोग होतेही रहते हैं क्योंकि जिसका संयोग होताहै अवश्यही फिर किसीकाल में तिसका वियोग भी होताहै और जिसका वियोग होताहै फिर किसी कालमें तिसका संयोग भी होताहै इसवास्ते दृष्ट उपायों करके मानस दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति भी नहीं होसक्तीहै और आधिभौतिक दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति भूतोंसे रक्षाद्वारा नहीं होसक्ती है क्योंकि सदैव काल रक्षाके उपाय बन नहीं सक्तेहैं इसी तरह आधिदैवक दुःखकी निवृत्तिभी सदैव काल नहीं होसक्ती है क्योंकि प्रथम तो ग्रहोंका फल अवश्यही भोगना पड़ता है यदि किसी मंत्रके जपसे एक ग्रहसे दुःखकी निवृत्ति होभी जावै फिर दूसरे काल में अवश्य तिसी ग्रहका फल दुःख भोगनाही पड़ता है और इसी तरह शीत वातादिजन्य दुःखकी निवृत्तिभी नहीं होसक्ती है क्योंकि वहभी सब आगमापायी हैं पूर्वोक्त युक्तियोंसे त्रिविध दुःखकी

निवृत्ति दृष्ट उपायों करके अर्थात् इसउपाय करके इस दुःखकी निवृत्ति अवश्यही होगी और निवृत्त होकर फिर नित्य निवृत्त रहेगी ऐसा नियम नहीं है किंतु इसप्रकारके नियमका अभाव होनेसे दृष्ट उपायोंसे त्रिविध दुःखकी निवृत्ति नहीं होसक्ती इस वास्ते सब पुरुषोंको पञ्चविंशति तत्त्वों के ज्ञानके लिये सांख्यशास्त्रकी जिज्ञासा करनी चाहिये १ ॥

मूल-दृष्टवदनुश्रविकःसह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतःश्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् २

अन्वय	पदार्थ
दृष्टवत्	= दृष्ट उपायके तुल्य है
आनुश्रविकः	= वेदोक्त उपायभी
सहि	= निश्चयकरके सो वेदोक्त उपायभी
अविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः	= अशुद्धि और नाश तथा अतिशयकरके युक्त है
तद्विपरीतः	= तिन दृष्ट और आनुश्रविक उपायों से विपरीत याने विलक्षण है
श्रेयान्	= श्रेय का कारक उपाय
व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्	= व्यक्त महदादि अव्यक्त प्रधान ज्ञः पुरुष इनके ज्ञानसे मोक्ष होती है

भावार्थ

त्रिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका नामही पुरुषार्थ है सो त्रिविध दुःखकी निवृत्ति जो है सो लौकिक उपाय जो धनादिक हैं तिन्हों करके भी अत्यंत निवृत्ति नहीं होसक्ती है क्योंकि धनादिकों के क्षय होनेपर फिर दुःखकी प्रवृत्ति होजाती है अर्थात् धन करके दुःख के निवृत्त होने से पश्चात् धन के नाश होनेपर फिर दुःखकी अनुवृत्ति याने उत्पत्ति देखने में आतीहै इसवास्ते दृष्ट उपाय से अत्यंत दुःख की निवृत्ति नहीं होती ॥ प्र० ॥ दृष्टउपाय से त्रिविध दुःख की निवृत्ति मतहो वैदिक उपायसे तो होजावैगी ॥ सो दिखाते हैं ॥ अपामसोमममृताअभूमागन्मज्योतिरविदामदेवान् किन्नूनमस्मान्कृणवदरातिःकिमुधूर्त्तिरमृतमर्त्यस्य ॥१॥ वेद में लिखा है यहमंत्र ॥ अपामसोमममृताअभूम ॥ वयंसोमंअपाम ॥ देवताकहते हैं कि हम सोमवल्ली को यज्ञ में पानकरके अमरहोगये हैं ॥ अगन्मज्योतिः ॥ तिसी सोमके पान करने से ज्योति जो स्वर्गहै तिसको प्राप्त होंगे ॥ देवान्अविदाम ॥ फिर देवसम्बन्धी भोगों को भी प्राप्तहोंगे ॥ किंनूनंअस्मान्कृणवत्अरातिः ॥ निश्चय करके अराति जो शत्रुहै वह हमारा किंकृणवत यानेक्या करसक्ता है ॥ किमुधूर्तिरमृतस्यमर्त्यस्य ॥ धूर्ती जो जराअवस्थाहै सो अमरता को प्राप्तभये जो हमलोकहैं वह हमारा क्याकरसक्ती है और वेदमें अश्वमेध यज्ञका भी अत्यंत फल श्रवण किया है ॥ सर्वांल्लोकान्जयति मृत्युंतरति पाप्मानंतरति ब्रह्महत्यांतरति योऽश्वमेधेनयजतइति ॥ जो पुरुष अश्वमेध यज्ञको करता है वह संपूर्णलोकोंको जयकरलेता है मृत्युको तरजाताहै पापोंसे तरजाताहै याने छूटजाता है ब्रह्महत्यासे भी तरजाता है जो यज्ञ में अश्वका हव-

नकरताहै ॥ वेदने अश्वमेधादि यज्ञोंका फलभी एकान्तात्यन्तिक कहाहै सो इस वेदोक्त उपायों से आत्यन्तिक त्रिविध दुःख की निवृत्ति होहीजावैगी तब फिर सांख्यशास्त्र विषयणि जिज्ञासा क्यों करनी किंतु नहीं करनी इसीसे वह जिज्ञासा व्यर्थ है ॥ उ० ॥ दृष्टवदनुश्रविकः ॥ गुरुमुखादनुश्रवतीत्यनुश्रवःवेदः ॥ गुरुमुखसेही जिसका परम्परा करके श्रवण होता चला आयाहो उसी का नाम आनुश्रविकहै उसीको वेद भी कहतेहैं सो वेदोक्त उपायभी दृष्टवत् हैं अर्थात् दृष्टलौकिक उपायों के तुल्यही हैं जैसे लौकिक उपाय हिंसारूपी अशुद्धि और नाश अतिशयता करके युक्तहैं तैसेही वेदोक्त उपायभी अविशुद्धिक्षय अतिशयता करके युक्तहैं सो दिखाते हैं यज्ञमें पशुका बध अवश्य होता है क्योंकि तिससे विना यज्ञहोही नहीं सक्ता इसवास्ते हिंसारूप अशुद्धिकरके वह युक्तहै ॥ सो कहा भी है॥ षट्शतानिनियुज्यन्तेपशूनांमध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्यवचनादूनानिपशुभिस्त्रिभिः १ वेदमें जो अश्वमेध यज्ञ करनेका वचन कहाहै तिस वचनसे मध्यमेऽहनि दुपहरके समय॥त्रिभिःऊनानिषट्शतानि ॥ तीनकम छै सौ ॥ पशूनांनियुज्यन्ते ॥ पशुओंकी यज्ञ में हिंसा कीजाती है ॥ औरयद्यपि यज्ञ करना श्रुतिस्मृति करके धर्मही विधान कियाहै तथापि हिंसाकरके युक्तहोनेसे अशुद्धिकरके युक्त है क्योंकि हिंसासे परे कोई भी अशुद्ध नहीं है और क्षय करके भी युक्त है सो दिखाते हैं ॥ बहूनीन्द्रसहस्राणिदेवानांचयुगेयुगे॥कालेनसमतीतानिकालोहिदुरतिक्रमः १ देवतों के युग युगमें काल करके हजारों इन्द्र व्यतीत होगये यह काल बड़ा दुरतिक्रम है किसी करके उल्लंघन नहीं किया जाताहै इसप्रकार इन्द्रादि देवतोंका भी नाशहोनेसे वैदिककर्मका फल क्षयकरके भी युक्तहै ॥

और स्वर्गमें अपनेसे अधिक ऐश्वर्यवाले को देखकर असहनतारूपी दुःख होताहै और अपने से कम ऐश्वर्यवाले को देखकर अभिमान होताहै इस प्रकारकी अतिशयता करके भी वैदिककर्म्म युक्तहै इसीपर मूलमें कहाहै आनुश्रावकभी दृष्टकेही तुल्यहै इसवास्ते वहभी श्रेयका साधन नहींहै ॥प्र०॥ तब फिर कौनश्रेयका साधनहै॥ उ० ॥ तद्विपरीतःश्रेयान्॥ तिन दृष्ट और आनुश्रविक उपायों से विपरीत विलक्षण जो उपाय है सो श्रेयका साधनहै ॥ सो दिखाते हैं ॥ व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ महत्तत्त्व अहंकार पञ्चतन्मात्रा एकादशइन्द्रिय पञ्चमहाभूत इनका नाम व्यक्तहै और अव्यक्त नाम प्रधानका है ॥ ज्ञः नाम पुरुष जीवात्माकाहै इन पञ्चविंशति तत्त्वोंके स्वरूपका जो ज्ञानहै वही श्रेयका साधनहै अर्थात् पचीस तत्त्वोंके ज्ञानसेही पुरुष मोक्षको प्राप्तहोताहै २ अब व्यक्त अव्यक्त पुरुष इनकी परस्पर विशेषताको दिखलाते हैं ॥

मूल-मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याःप्रकृतिविकृतयः सप्त
षोडशकस्तुविकारोनप्रकृतिर्नविकृतिःपुरुषः३॥

अन्वय	पदार्थ
मूलप्रकृतिः	= महत्तत्त्वादिकोंका मूल कारण जो प्रधानहै
अविकृतिः	= किसीका भी वह विकार नहीं है
महदाद्याः	= महत्तत्त्वादिक जो
सप्त	= सात हैं
प्रकृतिविकृतयः	= कारणरूपभीहै कार्यरूपभीहै
षोडशकस्तु	= एकादश इन्द्रिय पञ्चमहाभूत जो हैं

विकारः = सो कार्यही है कारण किसीका भी नहीं है
पुरुषः = पुरुष जो आत्मा है
नप्रकृतिः = न तो किसी का कारण है
नविकृतिः = न कार्य है किसी का

भावार्थ

प्रकृति विकृतिरूप जो सात महत्तत्त्वादिक हैं तिनका मूल कारण होने से तिसको मूलप्रकृति कहते हैं तिसका नाम प्रधान भी है सो मूलप्रकृति जो है अविकृति है अर्थात् किसी का भी कार्य नहीं है ॥ महदाद्याःप्रकृतिविकृतयःसप्त ॥ महत्तत्त्वादिक जो सात हैं सो प्रकृतिरूपभी हैं और विकृतिरूपभी हैं अर्थात् कारण कार्य उभयरूप हैं ॥ सो दिखाते हैं ॥ प्रधानसे प्रथम महत्तत्त्व उत्पन्न होता है इसीवास्ते वह प्रधान का कार्य है और महत्तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है इसवास्ते अहंकारका कारणभी है और अहंकार महत्तत्त्वसे उत्पन्न होताहै इसवास्ते महत्तत्त्वका कार्य है और पंचतन्मात्रा को अहंकार उत्पन्न करता है तिनका कारण भी है फिर शब्दतन्मात्र अहंकार से उत्पन्न होती है इसलिये अहंकार का कार्य है आगे आकाश को उत्पन्न करती है तिसका कारण भी है तैसे स्पर्श तन्मात्र अहंकार से उत्पन्न होती है इसलिये अहंकार का कार्य है वही फिर वायुको उत्पन्न करती है इसवास्ते कारणभी है इसीतरह गंध तन्मात्रा अहंकार से उत्पन्न होती है सो अहंकारका कार्य है आगे पृथिवी को उत्पन्न करती है इसवास्ते पृथिवी का कारणभी है और रूपतन्मात्रा भी अहंकार से उत्पन्न होती है अहंकार का कार्य है जलको उत्पन्न करती है तिसकाका-

रणभी है इसरीति से महत्तत्त्वादिक सात प्रकृति विकृति रूप हैं॥ षोडशकश्चविकारः ॥ षोड़श विकार हैं याने कार्यही है कारण किसी काभी नहीं हैं॥ सो दिखाते हैं॥ पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय एकमन और पांच महाभूत यह सोलह विकारही हैं किंतु प्रकृति किसीकाभी नहीं है आगे पृथिवी आदिक भूतोंके भी गो घटादिरूप विकार याने कार्य हैं और फिर गोघटादिकोंके भी दुग्ध दधि आदिक विकार हैं तबभी वह पृथिवी के विकार नहीं समझे जाते हैं क्योंकि पृथिवी आदिकों से अन्यरूप को नहीं प्राप्तहोते हैं किंतु पृथिवी आदिकों के विकार पृथिवी आदि रूपही रहते हैं और उनमें पार्थिव व्यवहारही होताहै और यहांपर जो अन्य तत्त्व का कारणहो वही एक तत्त्व कहा जाताहै जैसे महत्तत्त्व से अन्य रूप करके अहंकार एक तत्त्व उत्पन्न हुआ तिसका कारण महत्त-त्त्व होसक्ताहै और पृथिवी से पृथिवीरूप घट भयाहै वह पृथग्तत्त्व तो है नहीं किंतु पृथिवीरूपही है इस वास्ते भूतोंको अप्रकृति कहा है और सम्पूर्ण जो घटादिक हैं वह जैसे स्थूलरूप से स्थित और इन्द्रियों करके ग्राह्य हैं तैसे पांच स्थूलभूतभी स्थूलरूप से स्थित और इन्द्रियग्राह्यहैं इस वास्तेभी पृथक् तत्त्व नहीं होसक्ते हैं॥ न प्रकृतिः न विकृतिः पुरुषः॥ और पुरुष जो है सो किसीका कार्य्य भी नहीं है और न किसीका कारण है ३॥

॥ प्र०॥ व्यक्त अव्यक्त ज्ञः इन तीन पदार्थोंकी किन प्रमाणों करके सिद्धि होती है अथवा किस प्रमाण करके किस पदार्थ की सिद्धि होती है अर्थात् एकही प्रमाण करके तीनोंकी सिद्धि होती है या भिन्न भिन्न करके एक एक की सिद्धी होती है उन प्रमाणों का निरूपण अवश्य करना चाहिये क्योंकि ऐसा नियमहै लोक

में प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणके अधीन है ॥ इस वास्ते प्रमाणों का निरूपण भी करना चाहिये ३ ॥

मूल-दृष्टमनुमानमाप्तवचनं सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधंप्रमाणमिष्टंप्रमेयसिद्धिःप्रमाणाद्धि ४ ॥

अन्वय	पदार्थ
दृष्टं	प्रत्यक्षप्रमाण
अनुमानं	अनुमान प्रमाण
आप्तवचनं	शब्दप्रमाण
च	चपुनःइनतीनोंप्रमाणों करकेही
सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्	सर्वप्रमाणों की सिद्धि होने से
त्रिविधं	तीन प्रकारका
प्रमाणं	प्रमाण जो है
इष्टं	स्वीकार है
प्रमेयसिद्धिः	विषय की जो सिद्धिहै
प्रमाणात्	प्रमाणसेही होती है

भावार्थ

प्रत्यक्ष अनुमान उपमान ये तीनहीं प्रमाण हैं तीनों में से प्रथम प्रत्यक्ष कोही दिखाते हैं क्योंकि सब प्रमाणों में प्रत्यक्षही ज्येष्ठ है ॥ श्रोत्र त्वग् चक्षुः जिह्वा घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं और शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं शब्दको श्रोत्र ग्रहण करता है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रिय करके शब्दका प्रत्यक्ष होताहै और त्वगिन्द्रियकरके स्पर्शका चक्षुकरके रूपका जिह्वाकरके रसका घ्राण करके गन्धका प्रत्यक्ष होता है इन पांच ज्ञानेन्द्रियों

करके पांच विषयों के ग्रहणका नामहीं प्रत्यक्ष प्रमाण है जिस अर्थ का प्रत्यक्ष करके या अनुमान करके ग्रहण नहीं होताहै तिसका आप्तवचनसे ग्रहण करलेना आप्तनाम यथार्थवक्ताहै तिसका जो वचनहै उसीका नाम आप्तवचन है उसीको शब्दप्रमाण भी कहते हैं और जैसे प्रत्यक्ष अनुमान करके देवराज इन्द्रका और स्वर्ग में अप्सराका ज्ञान नहींभी होता है तब भी यथेन्द्रो देवराजः स्वर्गेऽप्सरसः ।। इन्द्र देवतों का राजाहै स्वर्ग में अप्सरः है इत्यादि आप्तवाक्य से होताहै इसीकानाम शब्दप्रमाणहै ।। और नैयायिक उपमानको भी पृथक् प्रमाण मानता है अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द येचार प्रमाण नैयायिक मानता है गोसदृशोगवयः गौके तुल्यही गवयभी होता है ।। गवय एक बनका पशु होताहै किसी ग्रामीण पुरुषने बनके रहनेवाले से पूछा गवय कैसा होता है उसने कहा गौके सदृश होता है सो यह तो आप्तके वचनसे सादृश्यता का ज्ञान हुआहै इस वास्ते यह शाब्दज्ञानहीं कहाजाताहै पृथक्प्रमाण नहीं सिद्ध होता है इस वास्ते उपमान शब्द केही अन्तर्गत हुआ और कोई अर्थापत्ति को पृथक् प्रमाण मानकर पांच प्रमाण मानता है सो अर्थापत्तिभी प्रथम प्रमाण सिद्ध नहीं होसक्ता किंतु अनुमान के ही अंतर्गत है सो अर्थापत्ति भी दो प्रकारकी है एकतो दृष्टार्थापत्ति दूसरी श्रुतार्थापत्ति है जैसे जीवित देवदत्त गृह में नहीं है इसवाक्य से जो जीवित देवदत्त गृह में नहीं है तब विदेश में अवश्य होगा ऐसा बोध जो अर्थापत्ति प्रमाण से करते हैं सो तो अनुमान करके ही होसक्ता है क्योंकि यहां पर गृहाभावही हेतु है वही जीवित देवदत्त की विदेश में स्थिति को कल्पना करासक्ता है इसवास्ते गृहाभाव हेतुहै विदेश-

स्थत्व साध्य है सो हेतु करके साध्यकी सिद्धी होजावैगी अनुमान केही अन्तर्भूत है इसीतरह ॥ पीनोदेवदत्तः दिवा न भुंक्ते ॥ स्थूल देवदत्त दिनमें भोजन नहीं करता है और भोजन से विना स्थूलता होती नहीं इसवास्ते रात्री में भोजन अवश्य करताहोगा अब यहांपर पीनत्व व्याप्य है और रात्री भोजन तिसका व्यापक है ऐसी व्याप्ति होने से श्रुतार्थापत्तिभी अनुमान के ही अन्तर्भूत हो जावैगी पृथक् कल्पना करनी व्यर्थ है और कोई अनुपलब्धि प्रमाणको भी मानता है उस के मतमें अभावका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण करके होता है सो प्रत्यक्ष प्रमाण के अंतर्भूत है क्योंकि इन्द्रियों करके विषयका ज्ञान होता है और इन्द्रियों करके ही तिन के अभाव का ज्ञान भी होता है पृथक् प्रमाण कल्पना करने की कोई जरूरत नहीं है इसीप्रकार और भी प्रमाणों को इनतीनों के ही अंतर्भूत जानलेना इसवास्ते तीनही प्रमाण हैं इनतीनों करके ही सब प्रमाणोंकी सिद्धि होजावैगी ॥ प्रमेयसिद्धिःप्रमाणाद्धि ॥ प्रधानबुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पञ्चमहाभूत पुरुष ये सब पञ्चविंशति तत्त्वहैं सोई व्यक्त अव्यक्त ज्ञ इन तीन नामों से कहेजाते हैं ॥ इन तीनोंमें से किसीकी सिद्धि तो प्रत्यक्ष करके होती है किसी की अनुमान करके किसी की शब्द करके सिद्धि होती है इस वास्ते तीनहीं प्रमाण कहे हैं ॥ ४ ॥ अब प्रमाणों के लक्षण को कहते हैं ॥

मूल ॥

प्रतिविषयाध्यवसायोदृष्टंत्रिविधमनुमानमाख्यातम् ।तल्लिंगलिंगिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनन्तु॥५॥

अन्वय पदार्थ

त्रिविधं = तीन प्रकार का
अनुमानं = अनुमान
आख्यातं = कथन किया है
तत् = सो अनुमान
लिंगलिंगिपूर्वकम् = लिंगलिंगिपूर्वक है
आप्तश्रुतिः = आप्तवक्ता का वाक्यही
तु = तु पुनः
आप्तवचनं = यथार्थ वचन है

भावार्थ

श्रोत्रादि इन्द्रियोंका जो शब्दादि विषयों में अध्यवसाय याने निश्चय करना देखा है इसीका नाम प्रत्यक्ष प्रमाणहै और अनुमान तीन प्रकारका कथन किया है शेषवत् पूर्ववत् सामान्यतो दृष्टंच ॥ पूर्वही जिसका कारणहोवै उसका नाम पूर्ववत्है जैसे मेघोंकी उन्नती याने अधिक घटाको देखकरके वृष्टिको सिद्ध करता है अद्य वृष्टिर्भविष्यति मेघोन्नतत्वात् ॥ आज वर्षा होगी मेघोंकी उन्नती होनेसे इसी अनुमानका नाम पूर्ववत्है और समुद्रकी एक जलकी बूंदमें प्रथम लवणकी सिद्धिकरके फिर सारे समुद्रको लवणवाला जो अनुमान करके सिद्धकरनाहै इसीका नाम शेषवत् अनुमानहै और एक देशसे चन्द्रमादि तारोंको दूसरे देशमें प्राप्त हुये देखकर अनुमान होताहै चन्द्रमा आदिक तारेभी क्रियावाले हैं एक देशसे दूसरे देशमें प्राप्तहोनेसे देवदत्तकी तरह जैसे देवदत्त क्रियावालाहै और एक देशसे दूसरे देशको प्राप्तभी होताहै तैसे चंद्रमा तारे आदिकभी हैं अर्थात् एक देशसे दूसरे देशको प्राप्तहोते हैं

इसीसे साबित होता है ये भी क्रियावालेहैं इसीका नाम सामान्यतोदृष्टाऽनुमानहै ॥ किञ्च लिङ्गलिङ्गिपूर्वकं ॥ सो अनुमान लिंग लिंगिपूर्वकहै लिंगनाम व्याप्यकाहै लिंगिनाम व्यापककाहै अर्थात् व्याप्य व्यापकपूर्वकही अनुमान होता है यह अनुमानका सामान्य लक्षण है कहीं तो लिंगकरके लिंगिका अनुमान होता है और कहीं लिंगिकरके लिंगका अनुमान होताहै प्रथम लिंगकरके लिंगी के अनुमान को दिखाते हैं जहांपर किसी पुरुषके हाथ में दण्डको देखा वहांपर ऐसा अनुमान होताहै अयं पुरुषःदण्डी कस्मात् दण्डग्रहणात् यह पुरुष यति है याने संन्यासी है क्योंकि इसने दण्डका ग्रहण कियाहै यह तो लिंगपूर्वक अनुमान है अब लिंगीपूर्वक अनुमानको दिखाते हैं ॥ जहांपर लिंगी करके लिंगका अनुमान करतेहैं उसका नाम लिंगीपूर्वक अनुमान है जैसे कहीं नदीके किनारे पर दण्डधरेहुयेको देखकर और समीपमें यति को बैठे देखकर वहांपर अनुमान करके सिद्ध होताहै जो यह दण्ड इस यतिकाहै ॥ ये अनुमान लिंगिपूर्वकहै क्योंकि लिंगि यतिको देखकर लिंगरूपी दण्डका अनुमान होताहै ॥ आप्तश्रुतिराप्तवचनं ॥ आप्तवक्ताका जो वाक्यहै उसी का नाम आप्तवचन है सो आप्तयाने यथार्थवक्ता आचार्य्यहैं ब्रह्माआदिक तिनका जो वेदरूपी वचनहै उसीका नाम आप्तवचनहै त्रिविध प्रमाणका निरूपण करदिया ॥ ५ ॥ अब जिस प्रमाण करके जिसकी सिद्धी होती है सो दिखाते हैं ॥

मूल

सामान्यतस्तुदृष्टादतींद्रियाणां प्रसिद्धिरनुमानात्
तस्मादपिचासिद्धंपरोक्षमाप्तागमात्सिद्धम् ॥ ६ ॥

अन्वय	पदार्थ
सामान्यतोदृष्टानुमानात्	= सामान्यतो दृष्टानुमानसे
अतीन्द्रियाणां	= अतीन्द्रियपदार्थों की
प्रसिद्धिः	= प्रकर्ष करके सिद्धि होती है
तस्मात्	= तिस सामान्यतोदृष्टानुमान से भी
अपिच	= निश्चयकरके च पुनः
असिद्धं	= जो पदार्थ सिद्ध नहीं होता
परोक्षं	= और परोक्ष है
आप्तागमात्	= शब्दप्रमाण से
सिद्धम्	= वह पदार्थ सिद्ध है

भावार्थ

जो अतीन्द्रियहैं अर्थात् इन्द्रियोंका विषय नहीं है उनकी सिद्धि सामान्यतो दृष्टानुमानसे होती है॥ सोप्रधान और पुरुष दोनों अतीन्द्रिय हैं इस वास्ते इनकी सिद्धि सामान्यदृष्टाऽनुमानसे करतेहैं और जिसका ये त्रिगुणात्मक महदादि कार्यहैं वही प्रधानहै सो हैतो अचेतन परंतु चेतनकी तरह प्रतीत होतीहै और प्रधान से भिन्न अधिष्ठाता पुरुष है सो चेतनस्वरूप है और व्यक्त जो महदादिकहैं वह तो प्रत्यक्ष प्रमाण करकेही सिद्धहैं और जो प्रत्यक्ष करके सिद्ध नहीं है और परोक्षभी है वह आगम याने शब्द प्रमाण करके सिद्धहै यथेन्द्रो देवराजः उत्तराः कुरवः स्वर्गेऽप्सरसः। जैसे इन्द्र देवतोंका राजा है और उत्तर में कुरुहैं स्वर्ग में अप्सरा हैं॥ इसवाक्य करके इन्द्रादिकों की सिद्धि होती है॥ ६॥ कोई कहता है जिस पदार्थ की प्रतीति नहीं होतीहै वह नहीं है जैसे

पुरुषका दूसरा शिर और तीसरी भुजा नहीं है इसवास्ते तिसकी प्रतीति भी नहीं होती है तैसेही प्रधान पुरुषकी भी प्रतीति नहीं होती इसवास्ते वह भी नहींहै ॥ सो ऐसा नियम नहीं है जो जिसकी प्रतीति नहीं होती वह नहीं है किन्तु विद्यमान पदार्थोंकी भी प्रतीति आठ हेतुवोंसे नहीं होती है ॥ सो दिखाते हैं ॥

मूल–अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ॥ सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च ७ ॥

अन्वय	पदार्थ
अतिदूरात्	= अतिदूर होनेसे
सामीप्यात्	= अतिसमीप होनेसे
इन्द्रियघातात्	= किसी इन्द्रियके नाशसे
मनोऽनवस्थानात्	= मन की अनवस्थितिसे
सौक्ष्म्यात्	= अतिसूक्ष्म होनेसे
व्यवधानात्	= बीचमें व्यवधान होनेसे
अभिभवात्	= दूसरे करके अभिभव होनेसे
समानाभिहाराच्च	= इकट्ठा मिलजानेसे

भावार्थ

इस लोक में विद्यमान पदार्थोंकी भी अति दूरसे अनुपलब्धि याने अप्रतीति देखी है जैसे देशांतरमें याने दूर देशमें स्थित चैत्र मित्रादिकों की विद्यमानोंकीभी अप्रतीति देखते हैं और अति समीप होनेसेभी पदार्थकी प्रतीति नहीं होती है जैसे चक्षुमें अ-

ञ्जनकी प्रतीति नहीं होती है अति समीपभी है तबभी नेत्र तिस को नहीं देखसक्ता है ॥ और इन्द्रियका अभिघात याने नाश होने से भी वस्तु की प्रतीति नहीं होतीहै जैसे अंधेको रूपकी प्रतीति नहीं होती क्योंकि तिसका चक्षु इन्द्रिय नष्ट होगया है इसी प्रकार जिसका श्रोत्रइन्द्रियनष्ट होगया है उसको शब्दकी प्रतीति नहीं होती है घ्राणेन्द्रियके नाशसे गन्धका ज्ञान नहीं होताहै रसनाके नाशसे रसका त्वगिन्द्रियके नाशसे स्पर्शका ज्ञान नहीं होता है॥ और मनकी अनवस्थितिसे ज्ञान नहीं होताहै जैसे एक पुरुष कथन करताहै और दूसरा कहता है मेरा मन स्थिर नहीं है इस वास्ते मैंने नहीं सुना फिर कथन करिये ॥ और अति सूक्ष्म पदार्थ कीभी उपलब्धि नहीं होती है ॥ जैसे आकाश में अतिबारीक धूलीकी और उष्णता की तथा परमाणुवोंकी प्रतीति नहीं होती है अति सूक्ष्म होनेसे और बीचमें व्यवधानहोनेसे भी पदार्थ की प्रतीति नहीं होती है जैसे दीवारके दूसरी तरफ रक्खीहुई वस्तु नहीं दिखाती है क्योंकि बीचमें दीवारका व्यवधान है और अभिभव से भी वस्तुकी प्रतीति नहीं होती है जैसे सूर्यके तेज करके अभिभूत याने दबायेहुये ग्रहनक्षत्रादिक नहीं दिखातेहैं और समानाभिहाराद्यथामुद्गराशौ ॥ जैसे उरदके अंबारमें थोड़ेसे फेंकेहुये उरदोंकी जुदाकरके प्रतीति नहीं होसक्तीहै क्योंकि मिलगयेहैं ॥ पूर्वोक्त आठहेतुवोंसे विद्यमान पदार्थका भी लोकमें ज्ञान नहीं होसक्ताहै ॥ ७ ॥ यदि च प्रधानपुरुष भीहैं तब इनकी अस्तिको किस हेतुसे स्वीकार करतेहो और इनकी अप्रतीति किस हेतुसे होतीहै सो कहना चाहिये ॥ अब जिस हेतु से इनकी प्रतीति नहीं होती है सो दिखाते हैं ॥

मू ०-सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात्कार्य्यतस्तदुपलब्धिः ॥ महदादितच्चकार्यंप्रकृतिविरूपंस्वरूपंच ८ ॥

अन्वय पदार्थ

सौक्ष्म्यात् = सूक्ष्म होने
तदनुपलब्धिः = प्रधान की अप्रतीती है
नाभावात् = अभावहोनेअप्रतीति नहीं है
कार्यतः = कार्यसे
तदुपलब्धिः = प्रधानकी उपलब्धि होती है
महदादि = बुद्धिआदिकजोहैं
तच्च = चपुनः तिसप्रधान के
कार्य्यं = कार्य हैं
प्रकृतिविरूपं = प्रधानके असदृश हैं
स्वरूपंच = चपुनः प्रधानकेसदृशभीहैं

भावार्थ

सौक्ष्म्यातदनुपलब्धिः ॥ वह प्रधान अति सूक्ष्म है इस वास्ते तिसकी प्रतीति नहीं होतीहै जैसे आकाश में सूक्ष्म उष्मताकी और जलादिकों के परमाणुआदिकों की उपलब्धि नहीं होती है वैसेही अति सूक्ष्महोनेसे प्रधानकी भी उपलब्धि नहीं होतीहै कुछ प्रधानके अभाव होनेसे तिसकी अनुपलब्धि नहींहै॥क्योंकि कार्य से तिसकी उपलब्धी होती है कारणको देखकर कार्यका अनुमान होताहै सो प्रधानभी कारणहै जिसके कार्य महदादिकहैं ॥ बुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पञ्चमहाभूत ये सब सा-

क्षात् और परंपराकरके प्रधानकेही कार्य हैं ॥ तच्चकार्यं प्रकृतिवि- रूपं स्वरूपंच ॥ सो बुद्धिआदिक जो प्रधानके कार्य हैं सो प्रकृतिके विरूपहैं याने असदृशरूपवाले हैं और समानरूपवाले भी हैं जैसे लोक में भी पिताके पुत्र किसी अंशमें तुल्य होताहै और किसी अंशमें अतुल्य भी होताहै जिस हेतु करके महदादि कार्यप्रधानके तुल्य हैं और जिसहेतुकरके अतुल्यभी हैं तिसहेतुको आगे कहेंगे॰ शून्यवादी कहता है असत्से सत् जगत्की उत्पत्ति होतीहै और नैयायिक कहता है सद्रूप परमाणुवोंसे असत्कार्यरूप जगत्की उत्पत्ति होतीहै वेदांती कहताहै एक सद्रूपब्रह्मका विवर्तरूप जगत् है ॥ सो इन तीनोंका पक्षठीक नहीं है ॥ प्रथम तो असत् शून्य से सत्जगत्की उत्पत्ति नहीं होसक्ती है क्योंकि यदि शून्यसे उ- त्पत्ति मानोगे तब शून्यनाम अभावका है सो अभाव तो सर्वत्र विद्यमान है तब फिर विना उपादान कारण मृदिका आदिकों के सर्वत्रही घटादिरूप कार्यकी उत्पत्ति होनी चाहिये होती तो नहीं है इसवास्ते शून्य जगत्का कारण नहीं होसक्ताहै शून्यवादीका क- थन मिथ्याहै और नैयायिक जो सद्रूप परमाणुवोंसे असत्कार्यरूप जगत्की उत्पत्ति मानता है तिसका भी कथन ठीक नहीं है क्यों कि कार्य कारणका अभेद होताहै सो नहीं होगा क्योंकि सत् अ- सत्का अभेद बनताही नहीं है और जो वेदांती ब्रह्मका विवर्त जगत्को मानताहै उसका भी मत ठीक नहीं है क्योंकि सतः स- ज्जायते ॥ सत्से सत्की उत्पत्ति होती है इस श्रुतिके साथ विरोध आवेगा और अप्रपंचरूप ब्रह्मकी प्रपंचरूप जगत्करके जो प्रतीति है वहभी भ्रमरूपही होगी तब कोई भी व्यवहार सिद्ध नहीं होगा और होताहै इसवास्ते जगत्को विवर्तरूपता भी नहीं बनती ।

इसवास्ते ये तीनों मत त्यागने योग्य हैं और बौद्धादिक भी असत्कार्यवादीहैं सो उनका मत भी त्यागने योग्य है क्योंकि असत् से सत्की उत्पत्ति नहीं होती और सत्से असत्की उत्पत्ति नहीं होती है इस वास्ते सांख्यदर्शन में सत्कार्यवादही कहा है और पूर्वोक्त मतोंमें प्रधानकी सिद्धिभी नहींहोतीहै सो प्रधानकी सिद्धि वास्ते सत्कार्यवाद को दिखाते हैं ॥

मूल ॥

असदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात् ॥
शक्तस्यशक्यकरणात्कारणभावाच्चसत्कार्यम् ९ ॥

अन्वय	पदार्थ
असदकरणात्	= असत् से सत्कार्य नहीं बनता
उपादानग्रहणात्	= उपादान का ग्रहण होने से
शक्तस्य	= शक्तिविशिष्ट को
शक्यकरणात्	= शक्य करने से
कारणभावाच्च	= चपुनः कारणके विद्यमान होने से
सत्कार्यम्	= कार्य सत् है

भावार्थ

असत्से सत्कार्य्य नहीं बनता है क्योंकि असत् जो है कार्य्य का कारण किसी प्रकार सेभी नहीं होसक्ता इस वास्ते कार्य सत्है और यह कार्य कारणके व्यापार से पूर्वभी सत्ही जान पड़ता है जैसे दण्डके व्यापार से पूर्वभी घटत्व का ज्ञान कुलाल को रहता है यदि ज्ञान न होवै तब किसी प्रकारसे भी तिसकी उत्पत्ति के व्यापारमें प्रवृत्ति न होवै और जो कोई कहता है अंकुरकी उत्पत्ति

में ध्वंसही कारण है क्योंकि जब पृथिवी से बीजमें अंकुर नि
कलता है तब प्रथम पृथिवी में विवर करके याने छिद्र करके औ
बीजका ध्वंस याने नाश करके या बीजको विदारण करके निक
लताहै इससे विना नहीं निकलता है इस वास्ते ध्वंसही कारण है
कार्य की उत्पत्ति में सो ऐसा उसका कथन ठीक नहीं है क्योंकि
ध्वंस नाम अभावकाहै अभाव कारण कदापि नहीं होसक्ताहै यदि
अभावही कारण होवै तब विना मृत्तिकाके पिण्डके भी घटादिकों
की उत्पत्ति होनी चाहिये क्योंकि अभाव तो सर्व्वत्र विद्यमान है
फिर सामग्री की क्या जरूरतहै और घटको ध्वंस होनेपरभी ति
घटके ध्वंससे फिर घटउत्पन्न होनाचाहिये होता तो नहींहै इसवास्ते
अभाव कारण नहीं होसक्ताहै और बीजके अवयव जोहैं सोई अंकुर
रूपी कार्यकी उत्पत्ति में कारण हैं और पृथिवी का भेदनादि व्या
पार हैं मुख्य कारण कार्य्य का उपादान होताहै सो उपादान का
रण में कार्य उत्पत्ति से पहले सूक्ष्म रूप होकर रहता है व्यापार
रूपी निमित्त कारणसे फिर प्राडुर्भावको प्राप्त होता है और नाश
के व्यापार से तिरोभाव को प्राप्त होता है कार्य सदैव ही सत् है
और कारण भी सदैव सत् है और जैसे नील रूपमें श्वेतरूपका
अभाव है याने असत् है और हजारों उपायों करके नीलरूप में
श्वेतरूपका प्रत्यक्ष नहीं होता है तैसे ही यदि असत् कार्य को
भी मानोगे तब घट पटादिकों का प्रत्यक्ष भी कदापि नहीं होगा
और तिसकी असत् से उत्पत्तिभी नहीं होसक्ती है इसीपर कहा
असदकरणात्॥ अर्थात् असत् से कार्य को कोई भी नहीं कर
सक्ता और लोक में भी देखते हैं असत् से सत्की उत्पत्ति नहीं
होती है जैसे बालू से तेलकी उत्पत्ति नहीं होसक्ती है क्योंकि व

लूमें तेलका अभाव है और तिलों में तिल की उत्पत्ति होसक्ती है क्योंकि तिलों में तेल उत्पत्ति से पूर्व भी विद्यमान है इसीसे साबित होता है उत्पत्तिसे पूर्व भी कार्य सत् है और मृत्पिंड में उत्पत्ति से पूर्व घट सत् है तैसे प्रधान में व्यक्तादिरूप कार्य भी सत्य है ॥ उपादानग्रहणात् ॥ उपादान का ग्रहण करनेसे भी कार्य सत् है ॥ जैसे इसलोक में दधी का अर्थी दुग्धरूप उपादान का ग्रहण करताहै और घटका अर्थी मृत्तिकारूपी उपादानका ग्रहणकरता है अन्य वस्तु का ग्रहण नहीं करता है इससे भी साबित होताहै कार्य उत्पत्ति से पूर्वभी सत्ही है ॥ और कार्य का सम्बन्धभी सब कारणों में नहीं है इसवास्ते एकही कार्य सब कारणों में उत्पन्न नहीं होता है किंतु जिस में उसका सम्बन्ध है उसी से उत्पन्न होता है अन्य से नहीं क्योंकि विना सम्बन्धके भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है जैसे स्वर्ण का भूषण स्वर्णसे ही उत्पन्नहोता है रजत से उत्पन्न नहीं होता है इसीपर मूल में कहा है शक्तस्य शक्यकरणात् ॥ शक्तिविशिष्टका नाम शक्त है और शक्यनाम कार्यका है अर्थात् जिस में कार्यके उत्पन्न करने की शक्ति है उसीसे कार्य उत्पन्न होसक्ता है उसीका नाम कारण भीहै उसी में कार्योत्पादक शक्ति का सम्बन्ध भी रहता है जैसे मृत्पिंडमें घटोत्पादक शक्तिका सम्बन्ध है तिसीसे कुलालचक्र चीवरादि सामग्री से घटको उत्पन्न करसक्ताहै बालू से नहीं उत्पन्न करसक्ता क्योंकि तिसमें घटोत्पादक शक्ति नहीं है इससे भी सिद्ध होता है कार्य सत् है ॥ कारणभावाचसत्कार्यं ॥ औरकार्य को कारणरूप होनेसे अथवा कार्य कारण का अभेद होनेसेभी कार्य सत्है जैसे श्वेत तन्तुवोंसे श्वेतही पट उत्पन्न होता है यदि तन्तुवों से पटको भिन्न मानोगे और असत्

मानोगे तब पट में श्वेतताभी नहीं होगी और सत् असत् का सम्बन्ध भी नहीं बनता है इसवास्तेभी कार्य सत् है और कार्य कारणका अभेदभी है क्योंकि जो जिसका धर्म नहीं होता तिसका तिसके साथ अभेदभी नहीं होता है जैसे गौ से अश्व भिन्न है अश्व गौ का धर्मभी नहीं है तैसे पट नहीं है पट तन्तुवों से अभिन्नहै इसवास्ते उनका धर्म याने कार्य है और जैसे सद्रूप यवोंसे यवही उत्पन्न होते हैं धानसे धानही उत्पन्न होता है कोद्रवसे यव या धान नहीं उत्पन्न होता इसयुक्तिसेभी कार्य सत् ही सिद्ध होता है ॥ और भगवान् ने भी गीतामें कहा है ॥ नासतो विद्यते भावो नाऽभावोविद्यतेसतः ॥ असत् का सद्भाव कदापि नहीं होता है और सत् का असत्भाव कदापि नहीं होता इससे भी सिद्ध होता है कार्य सत् ही है ॥ पूर्वोक्त पांच हेतुवोंसे यह वार्ता सिद्धहुई जो प्रधानमेंभी महदादि कार्य हैं अर्थात् प्रधानमेंभी महदादि कार्य्य सत् हैं उत्पत्तिसे पूर्वभी विद्यमानहै इसवास्ते सत्कार्यकी सत्कारण से उत्पत्ति होती है असत् से नहीं होतीहै ९ पूर्व जो कहाहै महदादि कार्य प्रकृति के विरूपभी हैं और स्वरूपभी हैं अब इसी को दिखाते हैं ॥

मूल ॥

हेतुमदनित्यमव्यापिसक्रियमनेकमाश्रितंलिंगं।
सावयवंपरतन्त्रंव्यक्तंविपरीतमव्यक्तम् १० ॥

अन्वय	पदार्थ	अन्वय	पदार्थ
व्यक्तं	= व्यक्त जो है	अनित्यं	= अनित्यहै
हेतुमत्	= हेतुवाला है	अव्यापि	= व्याप्यहै

सक्रियं = क्रियावालाहै	सावयवं = सावयव है
अनेकं = अनेक है	परतंत्रं = परतन्त्र है
आश्रितं = आश्रित है	विपरीतं = विपरीत इससे
लिङ्गं = लययुक्त है	अव्यक्तं = अव्यक्त है १०

भावार्थ

व्यक्तं॥ व्यक्त जो महदादि कार्य है सो हेतुमत् याने हेतु वाला है जिसका कोई हेतु याने कारण होवै उसका नाम हेतुमत् है और उपादान तथा हेतु और कारण तथा निमित्त ये पर्यायशब्द हैं सो व्यक्त का प्रधान हेतु है इसवास्ते व्यक्तको हेतुमत्कहाहै सो व्यक्त से लेकर महाभूतोंपर्यंत ये सब हेतु वालेहैं सो प्रधान कारण व्यक्तका है व्यक्तकारण अहंकारका है अहंकारकारण पञ्चतन्मात्रा और एकादश इन्द्रियों का है आगे पंचतन्मात्रा कारण पंचमहाभूतोंकाहै आगे आकाशका कारण शब्दतन्मात्राहै वायुका कारण स्पर्शतन्मात्राहै रूपतन्मात्रा तेज का हेतुहै रसतन्मात्रा जल का गन्धतन्मात्रा पृथिवी का कारण है और जो पूर्व पूर्व कार्य्य और उत्तर उत्तरका कारण है वह अपने कारणकोभी साथ लिये हुयेही उत्तर उत्तर का कारणहै क्योंकि जो कार्य होताहै सो विना अपने कारण के रह नहीं सक्ताहै जैसे पटरूप कार्य विना अपने उपादान कारणके नहीं रहसक्ता है और अपने उपादानको लिये हुयेही पट आगे वस्त्रादिकोंके प्रति कारण होता है तैसे व्यक्त जो महत्तत्त्व है सो भी अपने प्रधान कारण को लिये हुयेही अहङ्कार के प्रति कारण है आगे अहङ्कार पंचतन्मात्रा को भी इसीप्रकार जानलेना ॥ व्यक्तं अनित्यं ॥ जैसे मृत्पिण्ड से घट उत्पन्न होताहै और अनित्य है तैसे प्रधान से व्यक्त भी उत्पन्न होता है और अ-

नित्यहै यद्यपि सम्पूर्ण कार्य स्वभाव से तो नित्यहैं तथापि अवस्था
करके अनित्य याने नाशी हैं नाश क्या है कार्य का कारण में
लय होजाना उसीको तिरोभावभी कहते हैं उत्पत्ति क्याहै रूपांतर
से कारण का होजाना उसीका नाम प्रादुर्भावभी है ।। और कार्य
अव्यापि भीहै अर्थात् सर्वगत नहींहै परिच्छिन्नहै और प्रधानपुरुष
जो हैं सो सर्वगतहैं इसवास्ते वह कार्य किसीका भी नहीं है और
कार्यरूप व्यक्तक्रियाके सहितभी है क्योंकि संसार काल में त्रयोद
शविध करणों करके संयुक्त हुवाहुवा सूक्ष्म शरीरको आश्रयण कर
के जन्म मरण क्रिया को करता है इसी वास्ते उसको सक्रियं याने
क्रियाके सहित कहाहै।।अनेकं ।। बुद्धि अहङ्कार पंचतन्मात्रा एका
दश इन्द्रिय पंचमहाभूत इस रीति से व्यक्त अनेक हैं ।। आश्रितं।
जैसे पंचमहाभूत पंचतन्मात्रा के आश्रितहैं ऐसेही पंचतन्मात्र
अहङ्कारके आश्रितहैं इसीतरह यावत्कार्य अपने अपने कारण के
आश्रितहैं क्योंकि निराश्रय होकर कार्य एक क्षणमात्रभी नहीं रह
सक्ताहै।।लिंगंव्यक्तं।। व्यक्त जो कार्य है सो लयकरके युक्त है सो दि
खाते हैं लयकालमें याने प्रलयकाल में पंच महाभूत जो हैं सो पंच
तन्मात्रामें लय होजाते हैं और पंचतन्मात्रा तथा एकादश इन्द्रिय
अहंकारमें लय होजातेहैं आगे अहंकार महत्तत्त्व में महत्तत्त्व प्रधान
में लय होजाताहै इसरीति से यावत्कार्य लयकरके युक्त है ।। सा
वयवं ।। और कार्य सावयवभी है शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये अ
वयव हैं ।। परतंत्रम् ।। और सब कार्य परतंत्र है ।। जैसे प्रधानके
परतंत्रबुद्धिहै बुद्धिके परतन्त्र अहंकारहै अहंकार के परतन्त्र पञ्च
तन्मात्रा एकादश इन्द्रिय हैं और तन्मात्राके परतन्त्र पञ्चमहाभूत
इसरीति से और भी यावत् कार्य जानलेने ।। विपरीतंअव्यक्तम् ।

पूर्व जो गुण व्यक्तके कथन किये हैं तिनसे अव्यक्त विपरीत गुणों-
वाली है ॥ सो दिखाते हैं ॥ प्रधान से परे किंचित्भी नहीं है इस
वास्ते प्रधान नित्य है नित्यहोने से ही तिस की उत्पत्तिभी नहीं
होती है किसीसे इसीवास्ते उसको अहेतुमत् कहाहै और प्रधान
व्यापि है याने व्यापक है सर्वगत है सर्वगतहोने से ही क्रिया से
रहित है ॥ व्यक्तकार्य होने से अनेक है और तीनों लोकोंका का-
रण होने से प्रधान एक है ॥ व्यक्त कार्य होने से कारण के आ-
श्रित है और प्रधान अनाश्रित है क्योंकि किसीका कार्य नहीं है
और अव्यक्त अलिंगभी है क्योंकि सबकालय तो अपने अपने
कारण में होता है प्रधान का कोई भी कारण नहीं है उसका लय
किसी में होतानहीं इसवास्ते अलिंग है और अव्यक्त निरवयवभी
है क्योंकि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध प्रधान में नहीं है और अ-
व्यक्त स्वतंत्रभी है क्योंकि साधनांतर की अपेक्षा से विनाही कार्य
को उत्पन्न भी करती है ॥ १० ॥ व्यक्त अव्यक्त के वैधर्मों का नि-
रूपण करदिया अब उनके साधर्मों का निरूपण करते हैं ॥

मूल ॥

त्रिगुणमविवेकिविषयःसामान्यमचेतनंप्रसवधर्मि
व्यक्तंतथाप्रधानंतद्विपरीस्तथाचपुमान् ॥ ११ ॥

अन्वय पदार्थ

व्यक्तं = व्यक्त जो महत्तत्त्व है
त्रिगुणं = त्रिगुणात्मक है
अविवेकि = विवेकहीन है
विषयः = विषयभी है

सामान्यं = साधारण है
अचेतनं = जड़ है
प्रसवधर्म्मि = प्रसव धर्म्मवाली है
तथाप्रधानं = तैसे प्रधान भी है
तद्विपरीतः = तिससे विलक्षण है
तथाचपुमान् = तैसेही पुरुष भी है

भावार्थ

त्रिगुणंव्यक्तं ॥ व्यक्त जो महत्तत्त्वहै सो त्रिगुणात्मकहै ॥ ती
गुण होवें जिसमें उसका नाम त्रिगुणात्मकहै अर्थात् व्यक्त ती
गुणवालीहै ॥ अविवेकि ॥ गुणों से तिसका विवेकभी नहीं होसक्त
है ॥ जैसे यह गौ है यह अश्व है इस प्रकारका विवेक यह व्य
है यह गुण है नहीं होसक्ता है किन्तु जो गुणहैं वही व्यक्त है
व्यक्तहै वही गुणहै दोनोंकी अभेद प्रतीति होती है भेद करके
तीति नहीं होती है ॥ तथाविषयः ॥ और व्यक्त विषयभी है संपू
पुरुषों का विषयभूत है अर्थात् सब पुरुषों का भोग्यभी है ॥ त
सामान्यं ॥ सर्व्व पुरुष साधारणभी है अर्थात् पुरुषों करके ग्रह
करनेके योग्यभी है जैसे वेश्या नृत्यकारी के समय भ्रुवोंके कट
से अनेक पुरुषों को अपने हाव भाव को दिखाती है परन्तु भ्रू
सकी एकही सबको मोहन करने में साधारण है तैसे एकही व्य
भी साधारण है ॥ और अव्यक्त अचेतनभी है सुख दुःख मोहा
कों को नहीं जान सक्ती है क्योंकि जड़ीभूत है ॥ तथा प्रसवध
व्यक्तं ॥ व्यक्त उत्पन्न करनेवाले धर्म्मवाली भी है अर्थात् उत्प
करनेवाले धर्म करके भी युक्तहै ॥ बुद्धिसे अहंकार अहंकारसे प
तन्मात्रा तथा एकादश इन्द्रिय तन्मात्रा से पञ्चमहाभूत उत्प

होते हैं इस रीतिसे प्रसवधर्मि है इन धर्मों करके व्यक्त जो है सो अव्यक्तके सामान्य रूपवाली है अर्थात् सामान्य धर्मोंवाला दोनों को होने से जैसे व्यक्तहै तैसेही प्रधानभी है जैसे व्यक्त त्रिगुणात्मकहै तैसे अव्यक्तभी त्रिगुणात्मक है जिस त्रिगुणात्मक अव्यक्तके यह सब महत्तत्त्वादिक कार्यहैं और ऐसा नियमभी है जो गुण कारणमें होते हैं वही गुण कार्य्य में भी होते हैं जैसे काले रंगके तंतुवों से काले रंगकाही पटभी होताहै ॥ तथा अविवेकि प्रधानं ॥ जैसे अविवेकी व्यक्तहै तैसेही प्रधानभी है अर्थात् जैसे व्यक्तका गुणों से भेद नहीं होसक्ता है तैसे प्रधानकाभी गुणों से भेद नहीं होसक्ताहै यह गुण हैं और यह प्रधानहै ऐसा विवेचन नहीं होसक्ता है जैसे व्यक्त विषयहै तैसे प्रधानभी विषयहै और जैसे व्यक्त सामान्यहै सर्व पुरुष साधारणहै तैसे प्रधानभी सर्व पुरुष साधारणहै और जैसे व्यक्त अचेतनहै जड़है तैसे प्रधानभी जड़है प्रधानकोभी सुख दुःखादिकोंका ज्ञान नहीं होताहै और जैसे अचेतन मृत्पिंड से घटभी अचेतन उत्पन्न होताहै तैसेही अचेतन प्रधानसे अचेतनही व्यक्तभी उत्पन्न होती है व्यक्त अव्यक्तके सामान्य धर्मोंका अर्थात् व्यक्त अव्यक्तके साधारण धर्मोंका निरूपण करदिया अब तिन दोनोंसे विपरीत धर्मोंवाले पुरुषका निरूपण करते हैं ॥ तद्विपरीत तथापुमान् ॥ तद्विपरीतःताभ्यांव्यक्ताऽव्यक्ताभ्यांविपरीतःपुमान्॥ व्यक्त और अव्यक्त इनदोनोंसे विपरीत विलक्षण धर्मवाला पुरुषहै सो दिखाते हैं ॥ व्यक्त अव्यक्त दोनों तीनों गुणों वाले हैं पुरुष गुणों से रहितहै और व्यक्त अव्यक्त दोनों अविवेकी हैं पुरुष विवेकी है ॥ और व्यक्त अव्यक्त दोनों विषय हैं पुरुष अविषय है और व्यक्त अव्यक्त सामान्यहैं सर्व पुरुष साधारणहै पुरुष असामान्य है

सर्व साधारण नहीं है और व्यक्त अव्यक्त दोनों अचेतनहैं पुरुष
नसे विपरीत याने चेतनहै ॥ और जो ज्ञानशक्तिसे रहितहो वह ज
होताहै और जो ज्ञानशक्तिवालाहो वह चेतन होताहै ॥ वही चे
नही सुख दुःख मोहादिकोंको जानताहै जड़ नहीं जान सक्ताहै
और व्यक्त अव्यक्त दोनों प्रसवधर्मी हैं पुरुष अप्रसवधर्मीहै क्यों
पुरुष से किंचित्भी उत्पन्न नहीं होता है इसीवास्ते पुरुष तिन
विलक्षण है और पूर्ववाली कारिका में कथन किया है जैसे प्रध
अहेतुमत्है याने कारणसे रहितहै तैसे पुरुष भी अहेतुमत्है कार
से रहित है ॥ और जो व्यक्तहै सो हेतुमत्है अनित्य है तिस
विपरीत अव्यक्तको कहा है अर्थात् अव्यक्त अहेतुमत् है अ
नित्यहै तैसे पुरुषभी अहेतुमत् और नित्यहै ॥ और क्रियासे रहि
है व्यापक होनेसे ॥ और व्यक्त अनेकहै अव्यक्त एकहै तैसे पु
भी है और व्यक्तपर के आश्रित है अव्यक्त अनाश्रित है पुरुष
अनाश्रितहै ॥ व्यक्त लयकरके युक्तहै अव्यक्त लयसे रहित है तै
पुरुषभी लयसे रहितहै अर्थात् व्यक्तका अपने कारण अव्यक्तमें ल
होता है प्रधान और पुरुष ये दोनों कारणसे रहित हैं इनका ल
नहीं होता इसीवास्ते नित्यहैं और सावयव व्यक्तहै क्योंकि ति
शब्दादिक अवयवहैं और अव्यक्त तथा पुरुष दोनों निरवयव
इनके शब्द स्पर्शादिक अवयव नहीं हैं और व्यक्त परतंत्रहै अ
अव्यक्त स्वतंत्रहै तथा पुरुषभी स्वतंत्रहै ॥ इसरीतिसे अव्यक्त अ
पुरुषके साधर्मोंका निरूपण कियाहै पूर्ववाली कारिकामें और व्य
अव्यक्तकी साधर्मता और पुरुषकी वैधर्मता इसी कारिकामें कथ
करी है और जो कहाहै त्रिगुणमविवेकी अव्यक्तहै वह गुण कै
है तिन गुणोंके स्वरूपका निरूपणआगेकी कारिकामें करैंगे११

मूल--प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनि-
यमार्थाः ॥ अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमि
थुनवृत्तयश्चगुणाः ॥ १२ ॥

अन्वय		पदार्थ
गुणाः	=	सत्त्व रज तम नामक जो तीनों गुण हैं
प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः	=	प्रीति अप्रीति विषादरूप ही हैं
प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः	=	प्रकाश प्रकृतिनिरोध को कराते हैं
अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च	=	चपुनः परस्पर अभिभवको उत्पन्न करते हैं और मिले भी रहते हैं

भावार्थ

सत्त्व रज तम ये तीनों गुण प्रीतिरूप अप्रीतिरूप विषादरूप ों हैं तीनों में से प्रीतिरूप तो सत्त्वगुणहै प्रीति नाम सुखका है ो सुखरूपही सत्त्वगुण है और अप्रीति नाम दुःखका है सो दुःख-ूप रजोगुण है विषाद नाम मोहका है सो मोहरूप तमोगुण है और प्रीतिशब्द उपलक्षणहै आर्जव लज्जा श्रद्धा क्षमा दया ज्ञा-ादिकोंका भी अर्थात् एतद्रूपभी सत्त्वगुणहै और अप्रीति शब्द ष द्रोह मत्सर निंदादिकोंका भी उपलक्षण है सो एतद्रूपही रजो-ुणहै और विषाद शब्द विप्रलम्भ भय नास्तिक्य कौटिल कृपणता था अज्ञानादिकोंका भी उपलक्षण है अर्थात् एतदात्मकही त-

मोगुण है जिस पुरुषमें प्रीतिआदिक प्रतीत होवैं उससे सत्त्वादि गुणों का विचारपूर्व्वक निश्चय करलेना ॥ और सत्त्व रज त तीनों गुणों की साम्यावस्थाका नाम ही प्रकृति है और सत्त्वादि जो गुण कहें सो येही द्रव्यहैं नैयायिकने जो इनको विशेष गु माना है सो उसका मानना ठीक नहीं है क्योंकि ये संयोग वि योगवालेभी हैं और लघुत्व गुरुत्वादिक धर्मवालेभी हैं और गुण गुणनहींरहतेहैं और इन में संयोग वियोगादिकगुण रहतेहैं इस से यह द्रव्यहैं और पुरुषरूप पशु के बांधनेवाली त्रिगुणात्मक म हदादिरूप रज्जुकीभी रचना ये गुणही करते हैं इसीवास्ते ये बं का हेतुभी हैं ॥ तथाप्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः ॥ अर्थशब्दका अ समर्त्थ है अर्थात् प्रकाश करने में समर्त्थ सत्त्वगुण है औ प्रवृत्ति कराने में समर्त्थ रजोगुण है और स्थिति में याने आल कराने में समर्त्थ तमोगुण है ॥ तथाऽन्योऽन्याभिभवाश्रयज ननमिथुनवृत्तयश्च ॥ अन्योन्याभिभवा ॥ अन्योन्यं याने परस् एक दूसरे के तिरस्कार को करते हैं प्रीति अप्रीति आदिक ध करके एक दूसरे को दबालेते हैं जब सत्त्वगुण उत्कट होताहै य अधिक होता है तब रज तम को दबाकरके अपने गुण जो प्री प्रकाशादिक हैं उन्हों करके स्थित होताहै और जिस कालमें रुषमें रजोगुण अधिक होताहै तब सत्त्व और तमोगुण को द कर अप्रीति प्रवृत्ति आदिक धर्मों करके युक्त होकर स्थित होत और जब तमोगुण अधिक होताहै तब सत्त्व रजको विषादादि धर्मों से दबकर स्थित होताहै ॥ तथाऽन्योऽन्याश्रयाश्च ॥ पर एक दूसरे को आश्रयण करकेही रहते हैं ॥ अन्योऽन्यजनना जैसे मृत्पिण्ड घटको उत्पन्न करताहै तैसे गुण भी एक दूसरे

उत्पन्न करते हैं यहांपर उत्पन्न करना क्या है एक दूसरे से एक दूसरे का प्रादुर्भाव होजाता है वास्तवमें तो तीनों गुण सदैवही बने रहते हैं परन्तु एक उत्कट जिस काल में होताहै बाकीके दो सूक्ष्म होजाते हैं यही उत्पत्ति है ॥ अन्योऽन्यमिथुनाश्च॥ जैसे स्त्री पुरुष परस्पर मिथुन याने मिले रहते हैं तैसे गुण भी परस्पर मिले रहते हैं ॥ सो कहा भी है ॥

रजसोमिथुनंसत्त्वंसत्त्वस्यमिथुनंरजः ॥
उभयोःसत्त्वरजसोर्मिथुनंतमउच्यते ११

रजोगुण का सत्त्व के साथ मिथुन होताहै याने मेल रहता है और सत्त्व का मेल रजोके साथ रहताहै और दोनों सत्त्व रज का मिथुन तम के साथ कहा है अर्थात् परस्पर सहायकभीहै ॥ तथाऽन्योन्यवृत्तयश्च ॥ परस्पर एक दूसरा एक दूसरे में भी वर्तते हैं ॥ दृष्टांत ॥ जैसे सुरूपा सुन्दर रूपवाली स्त्री और शील स्वभाववाली पति को सर्वसुखों का जो हेतुहै वही सपत्नी को दुःख का हेतु होती है और वही रागी पुरुषोंको मोह का कारण होती है ॥ जैसे राजा सत्त्वगुण करके युक्त हुवा हुवा प्रजा का जब पालन करता है तब दुष्टों का निग्रह करता है और श्रेष्ठ पुरुषों को सुख उत्पन्न करता है और दुष्टों को दुःख मोह उत्पन्न करता है इसीप्रकार सत्त्वगुण अपने कालमेंभी रज तम की वृत्ति को उत्पन्न करता है और रजोभी अपने काल में सत्त्व तमकी वृत्ति को उत्पन्न करता है तैसे तमोगुणभी अपने आवरणरूप स्वरूप करके सत्त्व रजकी वृत्ति को उत्पन्न करताहै जैसे मेघ आकाश को आच्छादन करके जगत् को सुख उत्पन्न करताहै वही मेघ वर्षाकरके किसानों को हर

जीतने का उद्यम उत्पन्न करताहै और वियोगी पुरुषों को मोह उ-
त्पन्न करताहै इसीप्रकार गुणभी परस्पर एक दूसरे के गुणकी वृ-
को उत्पन्न करते हैं १२ ॥

मूल ॥

सत्त्वंलघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकंचचलंचरजः।
गुरुवरणकमेवतमः प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिः १३

अन्वय	पदार्थ	अन्वय	पदार्थ
सत्त्वं	= सत्त्वगुण	इष्टं	= देखा है
लघु	= हलका है	तमः	= तमोगुण
प्रकाशकं	= प्रकाशकहै	गुरु	= भारा
रजः	= रजोगुण	आवरणकं	= आछन्न स्व-भाव वाला
उपष्टंभकं	= दृढहै	प्रदीपवत्	= दीपककी तरह
चलं	= क्रिया वालाहै	अर्थतोवृत्तिः	= मिलकर कार्य करते हैं

भावार्थ

सत्त्वंलघुप्रकाशकंच ॥ जिस काल में सत्त्वगुण अधिक होता
तब शरीरके अंग सब हलके होजाते हैं और बुद्धिमें प्रकाश उत्प-
होताहै और इन्द्रिय सब प्रसन्न होजातेहैं ॥ उपष्टम्भकंचलंचरजः ।
और रजोगुण उपष्टम्भक याने रोकनेवाला है और क्रिया कर-
युक्त है अथवा उपष्टम्भ का अर्थ प्रेरकभी है क्योंकि सत्त्व तम स्व-
तो क्रियासे रहितहैं रजोगुण प्रेरण करके उनकी वृत्ति को करा-
है ॥ और जब रजोगुण अधिक होता है तब पुरुष क्रियाको करता

और तमो जब अधिक होता है तबशरीरके अंग सब भारे होते हैं और इन्द्रिय आच्छादित होजाते हैं अर्थात् उसकालमें आलस के युक्त होकर अपने कार्य करनेमें असमर्थ होजाता है॥ शंका॥ बकि सत्त्वगुणका स्वभाव प्रीतिही है और रजोगुणका स्वभाव प्रीतिही है तमोगुणका स्वभाव अवर्णात्मकही है तब कोई भी त्ति उत्पन्न नहीं होगी क्योंकि तीनों परस्पर विरोधी हैं जैस न्द उपसुन्द दोनों राक्षस परस्पर विरोधी होकर नष्टहोगये तैसे णभी तीनों परस्पर विरोधी होनेसे नाशको प्राप्त होजावैंगे॥ उ- र करते हैं प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिः ॥ प्रदीपके तुल्य अर्थके सिद्ध रनेमें तीनों गुण प्रवृत्त होते हैं जैसे तेल अग्नि बत्ती ये तीनों स्परविरोधी भी हैं परन्तु इनके संयोगसे जैसे दीपक प्रकाश ो उत्पन्न करदेता है इसीप्रकार सत्त्व रज तमभी परस्पर विरुद्ध भी तब भी परस्पर के संयोग से अर्थको सिद्ध करदेते हैं १३ ॥

ूल-अविवेक्यादिः सिद्धस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्ययाभावात् ॥ कारणात्मकगुणत्वात् कार्यस्याऽव्यक्तमपिसिद्धम् ॥ १४ ॥

अन्वय	पदार्थ
अविवेक्यादिः	= अविवेकादिक जो हैं
सिद्धः	= सिद्धहैं महत्तत्त्वादिकों में
त्रैगुण्यात्	= त्रिगुणात्मक होनेसे
तद्विपर्ययाभावात्	= तिन अविवेकादिकों के विपर्ययका अभावहोनेसे
कार्यस्य	= कार्यको भी

कारणात्मकगुणत्वात् = कारणके गुणोंवाला होनेसे
अव्यक्तमपि = अपि निश्चयकरके अव्यक्त
भी अविवेकादिक
सिद्धम् = सिद्ध होतेहैं

जो यह अविवेकादिक गुण हैं सो महत्तत्त्वादिकों को त्रि-
णात्मक होनेसे उनमें तो प्रत्यक्ष प्रमाण करकेही सिद्ध है परंतु
व्यक्त जो प्रधान है सो तो प्रत्यक्षका विषय नहीं है उसमें कै-
सिद्धहोसक्ते हैं किंतु नहीं होसक्ते हैं इसशंकाके उत्तरको कहते हैं
तद्विपर्ययाभावात् ॥ अब व्यतिरेक याने उलटे हेतुवोंको दिख-
हैं ॥ तस्यविपर्ययस्तद्विपर्ययस्तस्याभावस्तद्विपर्ययाभावस्तस्म-
द्विपर्ययाभावात्सिद्धमव्यक्तम् ॥ तस्याविवेकित्वस्यविपर्ययो
तिन अविवेकादिकोंका विपर्यय होवै जिसमें सतद्विपर्यय ॥
तिसका नामहै तद्विपर्यय सो अविवेकादिकोंका विपर्यय याने
लटा अर्थात् अविवेकादिकोंका न होना सो पुरुषमें है तहांपर
गुणताका भी अभाव है सो ऐसी व्याप्तिभी सिद्ध होती है जह
अविवेकित्वका अभाव है तहांपर त्रैगुण्यता का भी अभाव है
रुषमें और जहांपर अविवेकित्वका अभाव नहीं है तहांपर
गुण्यताकाभी अभाव नहीं है अर्थात् महत्तत्त्वमें त्रिगुणता है
विवेकादिकभी हैं ॥ और जहांपर घटका अभाव रहता है तह
घट नहीं रहता है ऐसेही जहांपर सत्त्वादिक गुण नहीं हैं तहां
विवेकादिक भी नहीं हैं और महत्तत्त्वादिकों में सत्त्वादिक गु
प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध हैं वहांपर अविवेकादिक भी सिद्ध हैं
व्यक्त कार्य है महत्तत्त्वका और ऐसा नेम है कारणके गुणही क
में रहते हैं इसीवास्ते कारण गुणात्मकही कार्य भी देख पड़ता

सो दिखाते हैं जहांपर तन्तु रहेंगे वहांपर पटभी रहेगा और तंतु-रूप कारणमें जो रूपादिक होवेंगे वही गुण पटरूप कार्यमें होवेंगे तिनका उलटा नहीं होसक्ता है जैसे तंतु कारण के गुणवाला पट-रूप कार्य है तैसे व्यक्त भी अपने कारण अव्यक्तके सुख दुःख मो-हादिक गुणोंवाला सिद्ध होताहै अर्थात् अव्यक्त भी त्रिगुणा-त्मक है और अविवेकादिकों वाला है और अव्यक्त दूरहै क्योंकि अति सूक्ष्म है और व्यक्त समीप है क्योंकि स्थूल है जो व्यक्तको देखताहै सो अव्यक्तको भी देखताहै क्योंकि कार्य कारण का अ-भेदहै और कारण गुणात्मकही कार्य होता है इसीसे अव्यक्त भी सिद्ध होगया पूर्वोक्त युक्तियों करके और यह जो पूर्वपक्षीने पूर्व शंका करीथी जो लोकमें नहीं प्रतीत होता वह नहीं है सो उसका कथन मिथ्याहै क्योंकि प्रधान भी है औरप्रतीत नहीं होताहै १४॥

मूल ॥

भेदानांपरिमाणात् समन्वयाच्छक्तितःप्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूपस्य ॥ १५ ॥

अन्वय		पदार्थ
भेदानां	=	कार्योंके
परिमाणात्	=	परिमाणसे
समन्वयात्	=	मूलकारणको देखनेसे
शक्तितः	=	शक्तिसे
प्रवृत्तेश्च	=	प्रवृत्तिसे
कारणकार्यविभागात्	=	कारणकार्य के विभागसे
अविभागात्	=	कारणकार्यकेअविभागसे

वैश्वरूपस्य = विश्वरूपका विभागप्र
नसे भी है

भावार्थ

इस जगत्का कारण अव्यक्त है ॥ भेदानांपरिमाणात् ॥
योंको परिमाण वाला होनेसे और लोकमें भी ऐसा देखनेमें अ
है ॥ जहांपर कर्त्ता होता है अर्थात् जिस पदार्थ का कोई क
होता है वह पदार्थ अवश्यही परिमाण वाला होता है जैसे कुल
ल परिमाणवाले मृत्पिण्डसे परिमाणवाले घटको बनाता है इ
प्रकार प्रधानका कार्य महत्तत्त्वादिक भी परिमाण वाले हैं क्यों
भेदवाले होनेसे ॥ प्रधान का कार्य बुद्धि है आगे बुद्धिका क
अहंकार है अहंकारका कार्य पञ्चतन्मात्रा और एकादश इन्
हैं तन्मात्रा का कार्य पञ्चमहाभूतहैं इस रीति से कार्यों को प
माणवाला होनेसे कोई कारण इनसबका है वही प्रधान है ॥
प्रधानहीं प्रथम परिमाणवाली व्यक्तको उत्पन्न करतीहै यदि प्र
न होती तब परिमाण से रहित व्यक्तभी उत्पन्न न होती क्यों
कारण से बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती इस वास्ते प्र
कोई कारण है जिसका कार्य यह महत्तत्त्वादिक हैं ॥ तथासम
यात् ॥ तैसे समन्वयसे याने मूलकारण से भी प्रधान की सि
होती है सो दिखाते हैं जैसे लोक व्रतधारी ब्रह्मचारी को देख
तिसके कुलका और उसके मूलकारण जो माता पिता तिन
स्मरण होता है जो इस बालक के माता पिता ब्राह्मण हैं क्यों
ब्राह्मणकाही धर्म है जो ब्रह्मचर्य को धारण करना ॥ इसी प्र
महदादि कार्य को देखकर इसके भी मूलकारण प्रधानका स्म
होता है ॥ तथा शक्तितः प्रवृत्तेश्च ॥ इस लोकमें जो जिस क

के बनाने में शक्तिमान् है वही तिसके बनाने में प्रवृत्त होता है जैसे कुलाल घटके बनाने में समर्थ है वह घटको बनाताही है पटको और रथको नहीं बनाता है क्योंकि उनके करने में वह समर्थ नहीं है तैसे प्रधान भी महदादिकों के उत्पन्न करने में समर्थ है इ-सवास्ते उनकोही उत्पन्न करती है पुरुषके करने में समर्थ नहीं है इस वास्ते उसको नहीं करती क्योंकि पुरुष अकारण है और नित्य है और कारण कार्य का विभाग होने से भी प्रधान कारण है ॥ करोतीतिकारणं ॥ जो करे बनावे उसका नाम कारण है क्रिय-ते इति कार्यं जो कियाजावे याने बनायाजावे उसका नाम कार्य है अब कारण कार्य के विभागको दिखलाते हैं जैसे घट दधि मधु जल दुग्धादिकों के धारण करने में समर्थ है तैसे मृत्पिंड उनके धारण करने में समर्थ नहीं है जैसे घटका कारण मृत्पिंड घटको उत्पन्न करलेता है तैसे घट मृत्पिंडको उत्पन्न नहीं करसक्ता है इसी प्रकार महदादिकों को देखकर तिनके कारण का याने प्रधान का अनुमान भी होता है अर्थात् महदादिकों से विभक्त और महदा-दिकों का कारण भी कोई है जिसका विभागरूप यह व्यक्त का-मर्यहे ॥ तथाऽविभागाद्वैश्वरूपस्य ॥ विश्वनाम जगत् का है ति-सिसकारूप याने व्यक्ति जो आकार विशेष है तिसका अविभाग होनेसे भी प्रधानकी सिद्धि होती है जैसे त्रैलोकी का और पांच महाभूतों का परस्पर विभाग नहीं है क्योंकि पञ्चभूतात्मकही त्रै-लोकी है अर्थात् तीनोंलोक महाभूतों के अन्तर्गतही है और पृ-थिवी आदिक पंचमहाभूत प्रलयकाल में पञ्चतन्मात्रा में अ-विभागको प्राप्त होजाते हैं आगे तन्मात्रा एकादश इन्द्रिय अहं-कारमें लय होते हैं अहंकार बुद्धिमें बुद्धि प्रधान में लय होतीहै इ-

सरीतिसे तीनों लोक्क प्रलयकाल में प्रधान में अविभाग को प्रा
होजाते हैं दुग्ध दधि का अविभाग होने से दुग्ध दधि का कारण
तैसे व्यक्त अव्यक्त का भी अर्थात् स्थूल सूक्ष्म का भी अव्यक्त
साथ अविभाग होनेसे अव्यक्तही दोनों का कारण है ॥ १५ ॥

मूल-कारणमस्त्यव्यक्तंप्रवर्त्ततेत्रिगुणतःसमुदयाः परिणामतःसलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥ १६ ॥

अन्वय	पदार्थ
अव्यक्तं	अव्यक्त जो प्रधान है
कारणं	वहीकारण
अस्ति	है
त्रिगुणतः	तीनों गुणोंके
समुदयाच्च	सम्यक् उदय होनेसे
परिणामतः	परिणामसे
प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्	हरएक गुणके आश्रय विशेषसे
सलिलवत्	जलकी तरह
प्रवर्त्तते	प्रवृत्त होती है

भावार्थ

कारणमस्त्यव्यक्तं ॥ अव्यक्तही संपूर्ण जड़ जगत्का कारण
जिस अव्यक्तसे महदादि संपूर्ण कार्यमात्र उत्पन्न होताहै ॥ त्रि
णतः ॥ और तीनोंगुणोंकी साम्य अवस्थाका नामही अव्यक्त
प्रधान है ॥ समुदयाच्च ॥ जैसे तीन गंगाके प्रवाह महादेवके

में गिरकर एक प्रवाहको उत्पन्न करते हैं॥ इसीप्रकार तीनों गुणों के समुदायसे अव्यक्त एकही व्यक्तको उत्पन्न करती है और जैसे तन्तुवोंका समुदाय एकही पटको उत्पन्न करदेता है इसीप्रकार अव्यक्तभी त्रिगुण समुदायसे महत्तत्त्वादिकों को उत्पन्न करती है॥ प्र०॥ जबकि एक प्रधानसे संपूर्ण जगत उत्पन्न होता है तब संपूर्ण जगत्‌को भी एकरूप करके होना चाहिये भिन्न भिन्न रूप करके क्यों होता है॥ उ०॥ प्रतिप्रतिआश्रयविशेषात् परिणामतःसलिलवत्॥ गुणोंका जो आश्रयविशेष है तिसको आश्रयणकरके परिणामसे जलकी तरह व्यक्त प्रवृत्त होता है॥ जैसे आकाशसे एकही मधुर रसवाला जल गिरता है आगे नाना उपाधियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे भेदको प्राप्त होजाता है नारकेल को प्राप्तहोकर मीठा होजाता है बिलको प्राप्तहोकर तिक्त होजाता है आँवलाको प्राप्त होकर कसैला होजाता है इसीप्रकार एकही प्रधानसे प्रवृत्तभये जो तीनों लोक हैं वहभी एक स्वभाववाले नहीं होते हैं क्योंकि देवतों में सत्त्वगुण उत्कट रहता है और रज तम उदासीन रहते हैं इसीवास्ते वह देवता अत्यन्त सुखी रहते हैं और मनुष्यों में रजोगुण उत्कट रहता है सत्त्व तम दोनों उदासीन रहते हैं इसीसे मनुष्य अत्यन्त दुःखी रहते हैं और तिर्यग्योनियोंमें तमोगुण उत्कट रहता है सत्त्व रज दोनों उदासीन रहते हैं इसीवास्ते वह अत्यन्त मूढ़ रहते हैं इनदोनों श्लोकों करके प्रधानकी सिद्धि कही है अब आगेके श्लोकमें पुरुषकी सिद्धिको कहेंगे १६॥

———*———

मूल ॥

संहतपरार्थत्वात्त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्
पुरुषोऽस्तिभोक्तृभावात् कैवल्यार्थप्रवृत्तेश्च १७

अन्वय		पदार्थ
संहतपरार्थत्वात्	=	जड़ संघातको परके लिये होनेसे
त्रिगुणादिविपर्ययात्	=	तीनों गुणोंका विपर्यय होने
अधिष्ठानात्	=	अधिष्ठानको आश्रयणकरने
भोक्तृभावात्	=	भोक्ताहोनेसे
कैवल्यार्थप्रवृत्तेश्च	=	मोक्षके लिये प्रवृत्ति होनेसे
पुरुषोऽस्ति	=	पुरुषभी है

भावार्थ

पूर्व जो कहा है व्यक्त अव्यक्तके ज्ञानसे मोक्ष होतीहै सो प्र
व्यक्तके स्वरूपको दिखाया पश्चात् पांच हेतुवोंकरके अव्यक्त
सिद्धिकिया और जैसे अव्यक्त सूक्ष्म है तैसे पुरुषभी सूक्ष्महै ति
पुरुषकी सिद्धि अब अनुमानकरके करते हैं ॥ पुरुषोऽस्तिकस्मात्
हतपरार्थत्वात् ॥ पुरुष है क्यों संघातको परकेवास्ते होनेसे अर्थ
जितना ये महत्तत्त्वादिकोंका संघातहै सो दूसरेके वास्तेही है य
दूसरे का भोग्य है संघात जड़ है और जड़का जड़ भोग्य न
होसक्ता है किंतु जड़का भोक्ता चेतनही होता है सो जो इस
घातका भोक्ता चेतनहै वही पुरुषहै इसप्रकारके अनुमानकरके पु
की सिद्धि होती है और जैसे किसी उत्तम मकानमें पलंग बि
है तिसपर सेज कसी है मसनद लगाहै और अनेक प्रकारके

पानादिक भोजनभी वहां रखे हैं वह जितना पर्यंकादि संघात है जो संघात अपने संघातके लिये नहीं है किसी पुरुष के लिये है जो उसका भोक्ता है वही पुरुष है इसी तरह महत्तत्त्वादिक संघात भी परके लिये है याने पुरुष के भोग्य के लियेहै तैसे ये पञ्चमहाभूतों का परिणामरूप स्थूल शरीर भी पुरुष का भोग्यहै और पूर्व जो कहा है त्रिगुणमविवेकि विषय इत्यादि अर्थात् त्रिगुणं अविवेकि विषय व्यक्तभी है और अव्यक्त भी है और तिनसे विपरीत है पुरुष इसीमें और हेतु को भी दिखातेहैं त्रिगुणादि विपर्ययात ॥ तीनों गुणोंका विपर्यय याने अभाव होनेसे अर्थात् प्रधानादि तीनों गुणोंके सहित हैं और पुरुष तीनों गुणोंसे रहित है और अधिष्ठान से भी पुरुष की सिद्धि होती है जैसे कूदने और चलनेवालों घोड़ों करके युक्त रथ सारथि करके प्रेरणा कियाहुवा अर्थात् सारथि को आश्रयण करके अपनी क्रियामें प्रवृत्त होता है ऐसे आत्माको आश्रयण करके शरीर भी प्रवृत्त होताहै तैसेही पुरुषको आश्रयण करके प्रधान भी प्रवृत्त होती है यह वार्त्ता षष्टितन्त्रि नामक में कही है इस से भी पुरुषकी सिद्धि होतीहै जैसे मधुर अमल लवण कटु तिक्त कषाय इन षट्रसों करके युक्त अन्नको सिद्ध करताहै दूसरेके लिये इसी प्रकार प्रधान भी पुरुषके भोग्य के लिये महत्तत्त्वसे लेकर शरीरपर्यंत पुरुष आत्माके लिये भोग्य को उत्पन्न करती है ॥ तथा कैवल्यार्थप्रवृत्तेश्च ॥ और कैवल्य जो मोक्ष तिसके लिये प्रवृत्ति होनेसेभी आत्माकी सिद्धि होतीहै क्योंकि सब विद्वान् और अविद्वान् दुःखों की निवृत्ति की इच्छा करते हैं इसीसे जाना जाताहै जड़ संघातसे भिन्न कोई आत्माहै जिसको मोक्ष की इच्छा होतीहै ॥ १७ ॥ प्र० ॥ पूर्वोक्त युक्तियोंसे जो

संघातसे भिन्न तुमने आत्मा सिद्ध कियाहै वह आत्मा यावत् शरीरोंमें एकही है माला के सूत्र की तरह अथवा हरएक शरीरमें भिन्न भिन्न है ॥ उ० ॥

मूल—जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च ॥ पुरुषबहुत्वंसिद्धंत्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥ १८ ॥

अन्वय	पदार्थ
जननमरणकरणानां	जन्ममरण और इन्द्रियों
प्रतिनियमात्	हरएक पुरुषके प्रतिनि[यम] होने से
अयुगपत्प्रवृत्तेश्च	न एककाल में प्रवृत्ति होने
त्रैगुण्यविपर्ययात्	तीनों गुणोंके भेदसे
चैव	च एव चपुनः निश्चय क[र]
पुरुषबहुत्वं	पुरुष बहुत्व
सिद्धं	सिद्ध होता है

भावार्थ

जन्म मरण और इन्द्रियों का हरएक पुरुषके प्रति नियम से पुरुष अनेकही सिद्ध होते हैं यदि एकही जीवात्माहोता एकके जन्म होते समय सबका जन्म होजाता और एक के मरण से सबका मरण होजाता है और एकके काने या अंधे या बहरे होने से सभी काने या अंधे या बहरे होजाते ऐसा तो नहीं होताहै इस से सिद्ध होताहै जो पुरुष अनेकहैं क्योंकि हरएक के जन्म तथा मरण का तथा इन्द्रियोंका नियम उसीके साथहै जिसका

एक जन्मता है तिसकाल में दूसरा नहीं जन्मता किंतु वह भिन्न
कालमेंहीं जन्मता है जिसकाल में एक मृत्यु होता है दूसरा तिस
कालमें नहीं मरता है तिसका मरणकाल जुदाही नियत है एक
अंधा होता या काना बहरा होताहै बाकी के नहीं होते क्योंकि
तिन के इन्द्रियों का भी अपने अपने आत्माके साथ नियमहै अ-
र्थात् हरएक आत्मा के इन्द्रिय अपने अपने भिन्न भिन्नहैं इससे भी
साबित होता है आत्मा अनेक हैं ॥ तथाऽयुगपत्प्रवृत्तेश्च ॥ यु-
गपत्नाम एककालका है नयुगपत् अयुगपत् अर्थात् एक काल
में सब पुरुषों की प्रवृत्ति के न होने से भी सिद्ध होताहै पुरुष अ-
नेक हैं यदि पुरुष एक होवै तब एक पुरुष की धर्म में प्रवृत्ति होने
से सबकी धर्ममेंही प्रवृत्ति होनी चाहिये या एककी अधर्म में प्रवृ-
त्तिहोने से सबकी अधर्म मेंही प्रवृत्ति होनी चाहिये ऐसा तो नहीं
होता है किंतु एककी धर्म में प्रवृत्ति होती है तब दूसरे की अधर्म
में प्रवृत्ति होती है किसी की वैराग्य में किसी की ज्ञान में किसी
की अज्ञान में प्रवृत्ति होती है भिन्न भिन्न प्रवृत्ति देखने में आती है
इससे भी साबित होताहै पुरुष अनेक हैं ॥ किञ्चान्यत् त्रैगुण्य-
विपर्ययात् ॥ कुछ और कहते हैं तीनों गुणों का भी परस्पर वि-
पर्यय याने उलटा पुलटा देखने से पुरुष अनेकही सिद्धहोते हैं जैसे
एकके तीन पुत्र उत्पन्नहुवे हैं किसी का तो सात्विक स्वभावहै वह
सुखीहै दूसरे का राजस स्वभावहै वह दुःखी है तीसरे का तामस स्व-
भावहै वह मूढ़है इसरीतिसे गुणोंका विपर्यय देखने से भी पुरुष अ-
नेक सिद्धहोते हैं १८ ॥ अब पुरुषके अकर्तापने को दिखाते हैं ॥

मूल ॥

तस्माच्चविपर्य्यासात्सिद्धंसाक्षित्वमस्यपुरुषस्य
कैवल्यंमाध्यस्थंद्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥ १९ ॥

अन्वय	पदार्थ	अन्वय	पदार्थ
तस्माच्च	= चपुनःतिसकारणसे	अकर्तृभावश्च	= चपुनः कर्तापन
विपर्य्यासात्	= विपर्य्ययात्	माध्यस्थं	= मध्यस्थपना
अस्यपुरुषस्य	= इसपुरुषको	द्रष्टृत्वं	= द्रष्टापन
साक्षित्वं	= साक्षिरूपता	कैवल्यं	= केवलपता
सिद्धम्	= सिद्धहोती है	सिद्धम्	= सिद्धहोती है

भावार्थ

तस्माच्चविपर्य्यासाच्च ॥ पूर्वोक्त तीनों गुणोंके विपर्य्ययसे विपरीत होनेसे अर्थात् पुरुष निर्गुण विवेकी भोक्ता है जिस से तिसी कारणसे कर्त्ताभूत जो सत्त्व रज तम तीनगुण ति साक्षी भी है और गुण जो कर्त्ता हैं वही प्रवृत्तहोते हैं साक्षी नहीं होता और केवल भावः कैवल्यं तीनों गुणोंसे केवल है र भिन्न है। माध्यस्थं ॥ मध्यस्थभी है जैसे ग्रामीण पृथिवी के में प्रवृत्त होते हैं और पास कोई परिव्राजक मध्यस्थ होकर है। उनकी क्रिया में प्रवृत्त नहींहोता इसी प्रकार गुणों के

होनेपरभी पुरुष प्रवृत्त नहीं होता है जिसकारणसे पुरुष मध्यस्थ है इसीवास्ते अकर्त्ताभी है और द्रष्टाभी है १६ ॥

प्र० ॥ जब कि पुरुष अकर्त्ता है तब फिर किस लिये निश्चय करता है जो मैं धर्म्मको करूंगा अधर्म्मको नहीं करूंगा जिसवास्ते निश्चय करता है इसवास्ते कर्त्ताही सिद्ध होताहै अकर्त्ता नहीं सिद्धहोता ॥ उ० ॥

मूल--तस्मात्तत्संयोगादचेतनंचेतनावदिवलिंगं ॥
गुणकर्तृत्वेचतथाकर्तेवभवतीत्युदासीनः२०॥

अन्वय पदार्थ

तस्मात् = तिसकारणसे
तल्लिंगं = सो महत्तत्त्वादिक
अचेतनं = अचेतन हैं
गुणकर्तृत्वेच = चपुनः गुणोंको कर्त्ता होनेसे
तथा = तैसे गुणोंके सम्बन्धसे
उदासीनः = उदासीन पुरुषभी

भावार्थ

कर्त्ताइव ॥ कर्त्ताकी तरह प्रतीत होताहै वास्तवसे कर्त्ता नहीं जैसे लोकमें शीतगुणके साथ जब घटका संयोग होता है तब घट भी शीतगुणवाला प्रतीत होताहै और जब उष्णगुणके साथ घट का संयोग होताहै तब उष्णगुणवाला प्रतीत होताहै घटमें शीत तथा उष्णगुण नहीं है इसीप्रकार महत्तत्त्वादिकोंमें चेतनता नहीं भी है तब भी चेतनपुरुषके संयोगसे महत्तत्त्वादिकोंमें भी चेतनता प्रतीत होतीहै अर्थात् चेतनकी नाईं महत्तत्त्वादिकभी प्रतीत होतेहैं

इसी कारणसे गुणही अध्यवसायको करते हैं पुरुष नहीं करता॥ वास्ते गुणही कर्त्ता है पुरुष कर्त्ता नहीं है ॥ यद्यपि लोकमें व्यवहार होताहै पुरुष कर्त्ता है भोक्ताहै गंताहै तथापि गुणही क है और पुरुष उदासीनभी है तबभी गुणोंके सम्बन्धसे पुरुषभी की तरह प्रतीत होताहै वास्तवसे पुरुष अकर्त्ता है जैसे अचोर भी चोरोंके संगकरके चोरही जानाजाताहै तैसेही तीनोंगुण क हैं तिनके साथ मिलनेसे अकर्त्ताभी पुरुष कर्त्ताकी तरह होजा है पूर्वोक्त रीतिसे व्यक्त अव्यक्त तथा पुरुष इनका विभाग दि दिया और तिनके विभाग के जाननेसेही मोक्षकी प्राप्तिहो है २० ॥ प्र० ॥ प्रधान और पुरुषके संघातमें क्या कारणहै ॥ उ

मूल-पुरुषस्यदर्शनार्थंकैवल्यार्थंतथाप्रधानस्य पंग्वंधवदुभयोरपिसंयोगस्तत्कृतःसर्गः २

अन्वय	पदार्थ
पुरुषस्य	= पुरुषके
दर्शनार्थं	= दर्शनके लिये
कैवल्यार्थं	= मोक्षके लिये
तथा	= तैसेही
प्रधानस्य	= प्रधानका
पंग्वंधवत्	= पंगु और अंधेकी तरह
उभयोरपि	= प्रकृति पुरुषका
संयोगः	= संयोग है
तत्कृतः	= तिस संयोगकृतही
सर्गः	= पुरुषको संसार है ॥

भावार्थ

पुरुषस्यदर्शनार्थं ॥ पुरुषका प्रधानके साथ जो संयोग है सो प्रधानको देखनेके वास्ते है इसीवास्ते पुरुष प्रकृतिको और प्रकृति के कार्य जो महत्तत्त्वादिक उनको देखता है और प्रधानकाभी पुरुषके दर्शनार्थही संयोग है और फिर वह संयोग पुरुष मोक्षके लिये भी है और पंगु अंधकी तरह प्रकृति पुरुषका संयोग है सो दिखाते हैं मार्गमें बहुतसे लोक जातेथे तिनमें एक पंगु और एक अंधाभी अपने सम्बन्धियों के साथ जातेथे दैवगति से एक चोरों का धाडा आकर पड़ा लूटने के वास्ते तब सब लोक भाग गये पंगु अंध के सम्बन्धी भी तिनको त्यागकर भागगये दैव-गति से इधर उधर भ्रमतेहुये पंगु अंधका परस्पर संयोग होगया और आपस में विश्वासकरके गमन के लिये औ दर्शन के लिये जब तिनका संयोग होगया तब अन्धे ने पंगुको अपने कांधेपर उठालिया और पंगुको दर्शनशक्ति थी गमनशक्ति नहीं थी अंधे में गमनशक्ति थी दर्शनशक्ति नहीं थी पंगु करके बताये हुवे मार्ग में अंधा चलने लगा चलते चलते दोनों अपने मंजिल पर पहुंच गये इसीप्रकार पंगुकी तरह पुरुषमें दर्शनशक्ति तो है परन्तु क्रियाशक्ति नहीं है और अंध प्रधानमें दर्शनशक्ति तो नहीं है कि-न्तु क्रियाशक्ति है जैसे पंगु अंधका अपनी मंजिलपर पहुंचने से विभाग होताहै तैसेंही प्रधान भी पुरुषको मोक्ष करके पुरुषसे निवृत्त होजाती है और पुरुष प्रधानको देखकरके मोक्षको प्राप्त होजाताहै प्रधान पुरुष दोनों के कृतार्थ होने परतिनका भी विभाग होजाता है और जैसे स्त्री पुरुष के संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है तैसेही प्रधान पुरुष के संयोग से सृष्टिकी भी उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥

मूल॥

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्चषोडशक
तस्मादपिषोडशकात्पञ्चभ्यःपञ्चभूतानि ॥२

अन्वय पदार्थ

प्रकृतिः = प्रकृतिसे
महां = महत्तत्त्व होताहै
ततो = तिसमहत्तत्त्वसे
अहंकारः = अहंकार होता है
तस्मात् = तिस अहंकारसे
गणश्च = चपुनः गण
षोडशकः = सोलहविकार होते हैं
तस्मादपि = तिनसेभी
षोडशकात् = सोलहगणोंसे
पञ्चभ्यः = पंचतन्मात्रा से
पञ्चमहाभूतानि = पंचमहाभूत होते हैं

भावार्थ

प्रकृति प्रधान ब्रह्म अव्यक्त बहुधानक माया ये छै पर्याय श
हैं और प्रकृति के सकाश से महत्तत्त्व उत्पन्न होती है महान् बु
आसुरी मति ख्याति ज्ञान प्रज्ञा ये सातपर्याय शब्द हैं फिर तिसम
त्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न होताहै और अहंकार भूतादि वैकृत
जस अभिमान ये पर्याय शब्द हैं॥ तस्मात्॥ तिस अहंकारसे
गणश्चषोडशकात्॥ सोलहरूप करके गण उत्पन्न होता है
पञ्चतन्मात्राप्रथमअहंकारसे उत्पन्न होती हैं॥ शब्द तन्मा

स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा रसतन्मात्रा गन्धतन्मात्रा ये पांच तन्मात्रा हैं तिसी अहङ्कार से एकादश इन्द्रिय उत्पन्न होते हैं श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं वाक् पाणी पादपायु उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय और एक मन ये ग्यारह इन्द्रिय हैं पांच तन्मात्रा के सहित षोड़शगण कहे जाते हैं ॥ पञ्चभ्यःपञ्च महाभूतानि ॥ पञ्चतन्मात्रा से फिर पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं सो शब्दतन्मात्रा से आकाश स्पर्शतन्मात्रा से वायु रूपतन्मात्रा से तेज रसतन्मात्रा से जल उत्पन्न होता है और गन्धतन्मात्रासे पृथिवी उत्पन्न होती है और जो पूर्व कहाहै व्यक्त अव्यक्त ज्ञ इनके विज्ञान से मोक्ष होती है सो महत्तत्त्व से लेकर महाभूतोंपर्यंत तेईस भेद व्यक्तके कथन करदिये और अव्यक्त के स्वरूप का भी कथन कर दिया है और पुरुषके स्वरूप को भी निरूपण करदिया है सब मिलाकर पचीस तत्त्व हुवे इन्हों करके ही तीनों लोक व्याप्त हैं इन पचीस तत्त्वों के स्वरूप के ज्ञानसे ही मोक्ष होती है ॥ सो लिखा भी है ॥ जटीमुण्डीशिखीवापि मुच्यते नात्रसंशयः ॥ जटाधारी हो मुण्डित हो शिखावाला हो जो पञ्चविंशति तत्त्वों को जानता है वह मुक्त होजाता है इसमें संशय नहीं है ॥ २२ ॥ प्र० ॥ प्रकृतिः पुरुषबुद्धिः अहङ्कार पंच तन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पञ्चमहाभूत ये पञ्चविंशति तत्त्व कथन कियेगयेहैं सो इनमें से महत्तत्त्व का क्या लक्षणहै ॥ उ० ॥

मूल ॥

अध्यवसायोबुद्धिर्द्धर्मो ज्ञानंविरागऐश्वर्यम् ॥
सात्विकमेतद्रूपंतामसमस्माद्विपर्यस्तम् ॥ २३ ॥

अन्वय	पदार्थ	अन्वय	पदार्थ
अध्यवसायो	निश्चयात्मक	सात्विकं	सत्त्वगुण का कार्य हैं
बुद्धिः	बुद्धि है	एतद्रूपं	बुद्धिकेहीरूप
धर्मो	धर्म	तामसं	तमोगुण का कार्य
ज्ञानं	ज्ञान	तस्मात्	तिस सात्विक बुद्धि से
विराग	वैराग्य	विपर्यस्तं	विलक्षण बुद्धि के गुण हैं
ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य ये सब		

भावार्थ

अध्यवसायोबुद्धिलक्षणम् ॥ अध्यवसायनाम उत्साह का और निश्चय का भी है जैसे भविष्यत्वृत्ति वाले अंकुरमें अर्थ इस बीजमें अंकुर उत्पन्न होगा ऐसा जो अध्यवसाय है और घ में पटमें ये घटहै ये पटहै ऐसा जो निश्चय है इसीका नाम बुद्धि है येही बुद्धि का लक्षण है सो बुद्धि सात्विक तामस रूपोंके भे करके आठ अंगोंवाली है तिनमें बुद्धिके सात्विक रूप चारप्रक के हैं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तिनमें से प्रथम धर्मको दिखाते हैं दया दान यम नियमादिरूप धर्म है तिनमें से अहिंसा सत्य अस्ते ब्रह्मचर्य परिग्रह ये तो यम हैं शौच संतोष तपः स्त्राध्याय ईश्व की भक्ति ये नियमहैं और ज्ञान प्रकाश अवगम भान ये ज्ञान पर्याय शब्दहैं ॥ भिन्नानुपूर्वीकत्वे सत्वे सति एकार्थबोधकत्वं र्यायत्वम् ॥ जिनशब्दों की अक्षरोंकी आनुपूर्वी तो भिन्न ोवै और एकही अर्थको कहनेवालेहों उसी का नामपर्यायहै जै

ज्ञान प्रकाशादि शब्द भिन्न भिन्न आनुपूर्वीवाले भी हैं अर्थात् ज्ञान में प्रथम ज्ञा है फिर न है प्रकाशमें प्रथम प्र फिर क फिर श है और एकही अर्थ के बोधक भीहैं इसवास्ते ये पर्याय शब्द हैं इसीतरह और स्थान में भी पर्याय शब्दों को जानलेना ॥ सो ज्ञान दोप्रकारकाहै एक तो वाह्यज्ञानहै दूसरा अंतरज्ञानहै दोनों में प्रथम वाह्यज्ञानको दिखाते हैं ॥ शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष इन षट् अंगों के सहित वेद और पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्र ये सब वाह्यज्ञानहै और प्रकृति पुरुषका जो ज्ञानहै अर्थात् सत्त्व रज तम इनतीनों गुणों की साम्य अवस्थाका नाम प्रकृति है और निर्गुण व्यापक चेतन का नाम पुरुषहै ये अंतरज्ञान है दोनोंमें से वाह्यज्ञान करके तो लोकों का संग लोकों में अनुराग होताहै और अंतरज्ञान से मोक्ष होतीहै ॥ और वैराग्य भी दोप्रकारका है एक तो वाह्यहै दूसरा अंतर है और जो दृष्ट विषयों में संग्रह रक्षा नाश हिंसादि दोषोंको देखकर तिनकी तृष्णा से रहित होजाना है ये तो वाह्य वैराग्य कहाता है और विरक्त को जिसकालमें ब्रह्मलोक के भोगों से लेकर प्रधानपर्यंत स्वप्नेन्द्रजालके तुल्य प्रतीत होने लगते हैं अर्थात् उनमें दुःख बुद्धि जब उत्पन्न होती तब तिसको अंतर वैराग्य कहते हैं और ऐश्वर्य आठ प्रकारका है ॥ अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व इनआठ सिद्धियों मेंहीं कामना की समाप्ति होजाती है अणु होकर अर्थात् अतिसूक्ष्म होकर जगत् में बिचरना इसीका नाम अणिमा है और अति महान् याने जितनी इच्छाहो बड़े होजाने की उतनाहीं बड़ा होजाना इसका नाम महान् है और अतिसूक्ष्म तथा हलकाहोकर पुष्प की रेणुके अग्रभाग में भी स्थिरहोजाना

इसका नामलघिमा है और जहां तहां बैठेहुवेही जिसवस्तुकी इच्छा हो वह प्राप्तहोजावे इसका नाम प्राप्ति है और जिसके करने की इच्छा हो उसीकाम करलेने का नाम प्राकाम्य है और प्रभुहोकर याने सब का स्वामीहोकर तीनों को प्रेरणा करने का नाम ईशित्व है और सबलोकों को अपने वश्य में करलेने का नाम वशित्व है अर्थात् स्वेच्छापूर्वक ब्रह्मादिलोकों में भोगोंको भोगनाहीवशित्वहै धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य ये चार बुद्धिके सात्विकरूपहैं जिसकाल में सत्त्वगुण करके रजतमका तिरस्कार होजाता है तब पुरुषबुद्धि के गुण जो धर्मादिक हैं तिनको प्राप्त होता है और तमोगुण, तिससे विपर्यय है अर्थात् विपरीत याने उलटा है जिसकाल में तमोगुण करके सत्त्व रजका तिरस्कार होजाता है तब अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य ये बुद्धिमें धर्म उत्पन्न होते हैं पूर्वोक्त रीतिसे यह सिद्धहुवा सात्विक तामस रूपों करके अष्ट अंगों के सहित त्रिगुणात्मक अव्यक्त से बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ २३ ॥ बुद्धिके लक्षणको कह दिया अब अहंकार के लक्षणको कहते हैं ॥

मूल ॥

अभिमानोऽहंकारस्तस्मात्द्विविधःप्रवर्त्ततेरागः ॥
एकादशकश्चगणस्तन्मात्रःपञ्चकश्चैव ॥ २४ ॥

अन्वय	पदार्थ
अभिमानो	= अभिमान जो है
अहंकारः	= तिसीका नाम अहंकार है
तस्मात्	= तिस अहंकारसे
द्विविधः	= दो प्रकारका

रागः = राग जो है सृष्टि
प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होता है
एकादशकश्च = चपुनः एकादश
गणः = इन्द्रियगण
तन्मात्रः = तन्मात्रा
पञ्चकश्चैव = चपुनः पांच

भावार्थ

अभिमान नाम अहंकारका है तिस अहंकारसे दो प्रकारका सर्ग याने सृष्टि उत्पन्न होती है एकादश इन्द्रिय और पांच तन्मात्रा २४ ॥

मूल ॥

सात्विकएकादशकःप्रवर्त्ततेवैकृतादहंकारात् ॥
भूतादेस्तन्मात्रःसतामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥

अन्वय पदार्थ

वैकृतात् = वैकृत नामक
अहंकारात् = अहंकारसे
सात्विकः = सात्विक अहंकारसे
एकादशकः = एकादशेन्द्रिय
प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होते हैं
भूतादेः = भूतादि अहंकारसे
तन्मात्रः = पंच तन्मात्रा होती हैं
सतामसः = सो तामस हैं
तैजसात् = तैजस अहंकारसे

उभयम् = सात्विक तामस होते हैं

भावार्थ

जिस कालमें अहंकारमें सत्वगुण उत्कट होता है और रज तम दोनों तिरस्कृत होते हैं तब तिस अहंकारका नाम सात्विक अहंकार होता है तिस सात्विक अहंकारकी पूर्बले आचार्य्योंने वैकृतसंज्ञा करी है अर्थात् तिसका नाम वैकृत अहंकार रखाहै तिस वैकृत अहंकारसे एकादश इन्द्रिय उत्पन्न होते हैं ॥ भूतादेस्तन्मात्रःसतामसः॥ जिसकालमें तमोगुण अहंकारमें उत्कट होताहै और सत्व रज तिसकरके तिरस्कृत होते हैं तब तिसका नाम तामस है तिस तामस अहंकारका नाम पूर्बले आचार्य्योंने भूतादि रखा है अर्थात् भूतोंका आदिकारणहै क्योंकि तिस भूतादि अहंकारसे पंच तन्मात्रा सूक्ष्म उत्पन्न होती हैं ॥ किंच तैजसादुभयम् ॥ जिसकाल में रजोगुण करके अहंकार में सत्व तम दोनों तिरस्कृत होजाते हैं तब तिस अहंकारका नाम तैजस होजाता है अर्थात् तिसकानाम तैजस होता है तिस तैजस अहंकारसे दोनों उत्पन्न होते हैं एकादश इन्द्रियगण और पञ्चतन्मात्रा जो ये सात्विक अहंकार वैकृतहोकर याने विकारी होकर एकादश इन्द्रियोंको उत्पन्न करता है सो तैजस अहंकार की सहायताको लेता है क्योंकि सात्विक में तो क्रियाहै नहीं और तैजस में क्रिया है इसवास्ते सात्विक तैजस करके युक्त होकर एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति में समर्थ होताहै तैसेही तामस भूतादि अहंकार को भी क्रियासे रहित होने करके क्रियावाले तैजस अहंकार के साथ मिलकरके तन्मात्रा को उत्पन्न करने में समर्थ होताहै ॥ इसीवास्ते कहा है तैजससे दोनों

उत्पन्न होते हैं इसरीति से तैजस अहंकार करके एकादश इन्द्रिय और पंचतन्मात्रा उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ प्र० ॥ जो वैकृत सात्विक अहंकार से उत्पन्न होता है तिसका क्या नाम है ॥ उ० ॥

मूल ॥

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनकानि ॥
वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥२६॥

अन्वय	पदार्थ
चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनकानि	= चक्षु श्रोत्र घ्राण रसना त्वक् ये सब
बुद्धीन्द्रियाणि	= ज्ञानेन्द्रिय हैं
वाक्पाणिपादपायूपस्थान्	= वाक् पाणि पाद गुदा लिंग इनको
कर्मेन्द्रियाण्याहुः	= कर्मेन्द्रियकथन करते हैं ॥

भावार्थ

चक्षुसे लेकर स्पर्शनपर्यंत इनको ज्ञानेन्द्रिय कथन करते हैं ॥ स्पर्श कियाजावे जिस करके तिसका नाम है स्पर्शन तिसी का नाम त्वगिन्द्रिय भी है और जिस वास्ते शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पांचविषयों को जानै अर्थात् इन पांचविषयों का ज्ञान होवै जिन्हों करके उनका नाम हैं ज्ञानेन्द्रिय और वाक् हाथ पांव गुदा लिंग इनका नाम कर्मेन्द्रिय हैं जिन्हों करके कर्म याने क्रिया कीजावै उनका नाम कर्मेन्द्रिय है तिन पांचोंमें से बाणी तो बोलती है और हाथ नानाप्रकार के व्यापारों को करते हैं और पाद गम-

नागमन व्यापारको करतेहैं गुदा मलके त्यागको करती है लिंग आनन्दको करता है इसरीति से बुद्धीन्द्रिय कर्मेन्द्रियों का स्वरूप कथन करदिया ॥ २६ ॥ प्र० ॥ मनका क्या स्वरूपहै और तिसका क्या व्यापार है ॥ उ० ॥

मूल–उभयात्मकमत्रमनः संकल्पकमिन्द्रियंच साधर्म्यात् ॥ गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं वाह्यभेदाश्च ॥ २७ ॥

अन्वय पदार्थ

उभयात्मकंमनः = उभयरूपमनहै
संकल्पकं = संकल्परूपभीहै
इन्द्रियंच = चपुनः इन्द्रियरूपभीहै
साधर्म्यात् = साधर्मतासे
गुणपरिणामविशेषात् = गुणोंके परिणामविशेषसे
नानात्वम् = इन्द्रियनानाभीहैं
वाह्यभेदाश्च = चपुनः वाह्यविषयोंकेभेदसेभी इन्द्रिय नानाहैं ॥

भावार्थ

एकादश इन्द्रियों के समुदाय में मन जो है सो उभयरूप है ज्ञानेद्रियों में तो ज्ञानेन्द्रियों की तरह होजाताहै और कर्मेन्द्रियों में कर्मेन्द्रियों की तरह होजाताहै क्योंकि मनहीं ज्ञानेन्द्रियों की प्रवृत्ति को कल्पना कराताहै और मनहीं कर्मेन्द्रियों की प्रवृत्ति को भी कल्पना कराताहै इसी वास्ते मन उभयरूपहै अर्थात् संकल्परूपभीहै इन्द्रियरूपभी है ॥ साधर्म्यात् ॥ समानधर्मतासे ॥ सात्विक

वैकृत अहंकार से ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय मनके सहित उत्पन्न होते हैं सो तिनमें से मनकी तो संकल्पवृत्तिहै और ज्ञानेन्द्रियों की शब्दादिक वृत्तियें होतीहैं और कर्मेन्द्रियोंकी वचनादिक वृत्तियें होतीहैं ॥ प्र० ॥ ये सब भिन्न भिन्न जो इन्द्रिय हैं सो भिन्नभिन्न विषयोंको जो ग्रहण करते हैं सो ईश्वर करके प्रेरित हुवे हुवे ग्रहणकरते हैं या अपने स्वभावसेही ग्रहण करतेहैं और बुद्धी आदिकों करके तो ग्रहण करसक्ते नहीं क्योंकि प्रधानकी तरह बुद्धि अहंकार भी जड़हैं और पुरुष करके भी नहीं ग्रहण करसक्ते क्योंकि पुरुष भी अकर्ता है तब फिर किस करके इन्द्रियविषयों को ग्रहण करते हैं ॥ उ० ॥ गुणपरिणामविशेषान्नानात्वंवाह्यभेदाश्च ॥ एकादश इन्द्रियों के शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध वचन आदान विहार उत्सर्ग आनंद येतो दश इन्द्रियों के और मनका संकल्प इस रीतिसे भिन्न भिन्न इन्द्रियों के जो भिन्न भिन्न विषय हैं सो गुणोंके परिणामविशेष से इन्द्रियों को भी नानात्वहै और वाह्य विषयों के भेदसे भी इन्द्रियोंको नानात्वहै नतो ईश्वर करके है न प्रधान करके न बुद्धि करके न अहंकार करके है और न पुरुष करके है किंतु स्वभावसेही गुणों के परिणामविशेष करकेही है ॥ प्र० ॥ गुणतो आपही अचेतनहैं तिन्हों करके कैसे प्रवृत्ति होसक्तीहै ॥उ०॥ जैसे जड़ दुग्ध की प्रवृत्ति वत्सकी पुष्टी के लिये स्वभावसेही होतीहै तैसे गुणोंकी प्रवृत्ति भी स्वभावसेही होती है और इन्द्रियों की प्रवृत्ति भी भाव सेही होतीहै ॥ तैसे अज्ञपुरुषकी मुक्ति के लिये प्रधानकी भी प्रवृत्ति होती है २७ ॥

मूल ॥

शब्दादिषुपञ्चानामालोचनमात्रमिष्यतेवृत्तिः ॥
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्चपञ्चानाम्॥२८॥

अन्वय पदार्थ

शब्दादिषु = शब्दादिक विषयोंमें
पञ्चानाम् = पांच ज्ञानेन्द्रियोंका
आलोचनमात्रं = ज्ञानमात्र
इष्यते = कथन किया है
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च॥ = चपुनः वचन आदान विहरण उत्सर्ग आनंद ये
पञ्चानां = पांच कर्मेन्द्रियोंके हैं

भावार्थ

मूलमें जो आलोचनमात्र कहा है सो मात्रशब्दका विशेष अर्थ है जैसे किसीने कहा यह भिक्षु भिक्षामात्रको लभता है अधिक नहीं॥ तैसे चक्षुभी रूपमात्रको ग्रहण करता है रसादिकों को नहीं ग्रहणकरता इसीप्रकार जिह्वा रसमात्रको घ्राण गन्धमात्रको श्रोत्र शब्दमात्रको त्वचा स्पर्शमात्रको इसीप्रकार कर्मेन्द्रियभी अपने अपने विहारकोही करते हैं वाग् वचनको हस्त ग्रहणको पादगमन को पायु मलके त्यागको उपस्थ आनंदको ग्रहण करता है दूसरे इन्द्रियके विहारको दूसरा नहीं करता है ॥ २८॥ अब बुद्धि अहंकार मन इनके व्यापारोंका निरूपण करते हैं ॥

मूल ॥

स्वालक्षण्यंवृत्तिस्त्रयस्यसैषाभवत्यसामान्या ॥
सामान्यकरणवृत्तिःप्राणाद्यावायवःपंच ॥ २९ ॥

अन्वय — पदार्थ

त्रयस्य = मन बुद्धि अहंकार
स्वालक्षण्यं = अपने लक्षणमेंही
वृत्तिः = वर्त्तते हैं
सैषा = यह जो वृत्ति है
भवति = होती है ॥
असामान्या = असाधारणरूपसे
सामान्यकरणवृत्तिः = सामान्य करणवृत्ति हैं
प्राणाद्यावायवः = प्राणादि वायु
पञ्च = पांच जो हैं

भावार्थ

अपने लक्षणमेंही जो वर्त्ते उसका नाम है स्वालक्षण्यवृत्तिः ऐसे मन बुद्धि अहंकार ये तीनहीं हैं सो बुद्धिका लक्षण अध्यवसाय है वही बुद्धिकी वृत्ति है और अहंकारका लक्षण अभिमान है वही अहंकारकी वृत्ति है और मनका लक्षण संकल्प है सोई मनकी वृत्ति है और बुद्धि अहंकार मन इन तीनोंकी स्वालक्षण्य वृत्ति जो कही है सो असामान्या वृत्ति है यानें असाधारण वृत्ति है और जो पूर्व ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्ति कही है वहभी असामान्या वृत्ति है अब सामान्यवृत्तिको कथन करते हैं सामान्येनकरणानांवृत्तिःसामान्यकरणवृत्तिः ॥ सामान्यरूप से जो सब इन्द्रियों की

वृत्तिः होवै उसका नाम है सामान्यकरणवृत्तिः सो ऐसे कौन है प्राणादि पंच वायुहैं ॥ प्राण अपान उदान व्यान समान ये पांच प्राणवायु हैं इन्हीं के सकाश से संपूर्ण इन्द्रियों की सामान्यरूपसे वृत्ति होती है याने अपने अपने विषयों में वर्ततेहैं॥ और जो मुख नासिका के अन्तर्वर्तनेवाली वायु है उसका नाम प्राण है तिस प्राणवायु के चलने से त्रयोदश प्रकार इन्द्रियों को अपने स्वरूप का लाभ होता है अर्थात् प्राणों के चलनेसेही पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय मन बुद्धि अहंकार ये भी अपना अपना काम करसक्तेहैं प्राणोंकी क्रिया से विना नहीं करसक्ते हैं जैसे पक्षी पिंजरे में चलता फिरता है तब पिंजराभी हिलता चलता रहता है इसी प्रकार प्राणोंकी क्रियासेही शरीररूपी पिंजरे में भी क्रिया होती है अन्यथा नहीं होती है ॥ मुख नासिकामें गमन करने से तिसका नाम प्राण है और अन्नादिकों के मलको नीचे लेजानेवाली वायुका नाम अपान है आहारादिकों कां सम विभाग करनेवाली वायुका नाम समान है इसकी क्रिया भी इन्द्रियों की सामान्यवृत्ति है और उदानवायु नाभिदेशसे मस्तकतक विचरती है इसकी क्रिया भी इन्द्रियों की सामान्यवृत्ति है और जो वायु सारे शरीर में व्याप्य करके रहती है उसकानाम व्यान है येभी इन्द्रियगण की साधारणवृत्तिहै इसरीतिसे ये पांच वायु इन्द्रियों की साधारणवृत्ति कथन करी हैं ॥ २९ ॥

मूल ॥

युगपच्चतुष्टयस्यतुवृत्तिः क्रमशश्चतस्यनिर्दिष्टा।
दृष्टेतथाप्यदृष्टेत्रयस्यतत्पूर्विकावृत्तिः ॥ ३० ॥

अन्वय पदार्थ

चतुष्टयस्य = बुद्धि अहंकार मन एकादशइंद्रियइनकी
युगपत् = एककालमेंही
दृष्टे = दृष्टविषय में
वृत्तिः = प्रवृत्ति होती है
क्रमशः = क्रमसेभी
च = चपुनः
तस्य = तिनचारों की प्रवृत्ति
निर्दिष्टा = प्रवृत्ति दिखाई है
तथापि = तबभी
अदृष्टे = अदृष्टविषय में
त्रयस्य = तीनों की मन बुद्धि अहंकार की
तत्पूर्बिका = चक्षुपूर्वक
वृत्तिः = प्रवृत्ति होती है

भावार्थ

बुद्धि अहंकार मन इनका एक एक इन्द्रियके साथ सम्बन्ध होने से चतुष्टय कहे जाते हैं सो इन चारों की प्रवृत्ति दृष्टविषय में तो एक कालमेंहीं होती है जैसे बुद्धि अहंकार मन तथा चक्षु ये चारों मिलकरकेही रूपको देखते हैं ये स्थाणुहै ऐसा निश्चय भी करते हैं इसी तरह बुद्धि अहंकार मन जिह्वा युगपद्ही रस को ग्रहण करते हैं और बुद्धि अहंकार मन घ्राण ये चारों मिलकर युगपद् एककालमेंही गन्धको ग्रहण करते हैं इसी प्रकार त्वक्-श्रोत्रभी बुद्धि अहंकार मन इनके साथ मिलकर एक काल मेंहीं स्पर्श तथा शब्द को ग्रहण करते हैं ॥ क्रमशश्च ॥ तस्यनि-

दिष्टा ॥ और फिर तिन चारों की क्रमसे भी विषयों में प्रवृत्ति
दिखाई है ॥ जैसे कोई पुरुष मार्ग में चला जाताहै उसने दूसरे
को देखा तब उसको ऐसा संशय हुवा स्थाणुर्वापुरुषोवा ये स्था
णु है या पुरुषहै ऐसा तिसको संशय हुवा जब कुछ आगे गए
तब उसने उसके ऊपर बेल को देखा फिर उसने पक्षी को ति
सपर देखा तब तिसके संशय का नाशक बुद्धि होती है ये स्था
ही है पश्चात् अहंकार निश्चय करताहै स्थाणुही ये है दूसरा को
भी नहीं है इस रीति से बुद्धि अहंकार मनकी क्रमसे प्रवृत्ति दे
है प्रथम चक्षु देखता है फिर मन संकल्प करताहै बुद्धि जानती
पदार्थ को अहंकार निश्चय करता है ॥ इस रीति से जैसे रूप
क्रम से प्रवृत्ति चारों की होती है तैसे शब्दादिकों में भी क्रम
प्रवृत्ति चारों की जानलेनी ॥ दृष्टविषय में प्रवृत्ति को दिखा
या अब अदृष्ट विषय में प्रवृत्ति को दिखाते हैं॥ अदृष्ट में अनाग
काल में और अतीतकालमें अनुमान आगम तथा स्मृति
बुद्धि अहंकार मन इन तीनोंकी प्रवृत्ति इन्द्रियपूर्वकही होती
अर्थात् अदृष्टविषय में रूपमें बुद्धि अहंकार मनकी प्रवृत्ति च
पूर्वक होती है और स्पर्श में त्वक्पूर्वक गन्ध में घ्राणपूर्वक र
रसपूर्वक शब्द में श्रवणपूर्वक क्रमसे प्रवृत्ति होतीहै और वर्तम
कालमें युगपत् तथा क्रमसे प्रवृत्ति होती है ३० ॥

मूल—स्वांस्वांप्रतिपद्यन्तेपरस्पराकूतहेतुकांवृत्ति
पुरुषार्थएवहेतुर्नकेनचित्कार्य्यतेकरणम् ३

अन्वय पदार्थ

स्वांस्वां = अपने अपने विषयमें बुद्धि

अहंकार मन

परस्पराकूतहेतुकांवृत्तिं = परस्पर अभिप्राय के हेतुकी वृत्तिको जानकरके

प्रतिपद्यंते = प्राप्त होते हैं

पुरुषार्थएवहेतुः = पुरुषकेअर्थही प्रवृत्तिका कारण है

न केनचित् } = किसीने भी
कार्यते करणं } नहीं किया है बनायाहै बुद्धि आदिकों को

भावार्थ

बुद्धि अहंकार मन येतीनों परस्पर एक दूसरेके अभिप्राय को जानकर अपनी अपनी प्रवृत्तिको प्राप्तहोते हैं पुरुषके अर्थ करनेके लिये ॥दृष्टांत॥ जैसे युद्धकेलिये बहुतसे मनुष्योंने मिलकर परस्पर संकेत करदिया असुककाल में असुक बरछी को लेकर असुकयष्टि को असुक तलवारको लेकर शत्रुके साथ युद्धकरने को चलै जब वह काल होता है तब एक दूसरेके अभिप्राय को जानकर अपने अपने शस्त्रको लेकर शत्रुके जीतने के पुरुषार्थ करने में तिनकी प्रवृत्ति होतीहै तैसेही पुरुषकेअर्थ करने के लिये बुद्धि आदिकोंकी भी प्रवृत्ति होती है बुद्धि अहंकार के तात्पर्य को जानकर अपने विषयको प्राप्त होती है पुरुषार्थ करने के लिये अहंकार बुद्धि के अभिप्राय को जानकर पुरुषार्थ करनेके लिये अपने विषय में प्रवृत्त होता है क्योंकि पुरुषकेअर्थही कर्तव्य है इसी लिये गुणोंकी प्रवृत्ति होती है इसीलिये ये बुद्धि आदिक करणभी पुरुषकेअर्थ कोही प्रकाश करते हैं ॥ प्र० ॥ कैसे बुद्धि आदिक आपही प्रवृत्त

होजाते हैं वह तो अचेतन हैं तिनकी प्रवृत्ति आपसे आप कैसे होसक्ती है ॥ उ० ॥ नकेनचित्कार्यतेकरणं ॥ करण जो बुद्धि आदिकहैं तिनकी प्रवृत्ति न ईश्वर कराताहै न पुरुष कराता है किंतु पुरुषकाअर्थही तिनकी प्रवृत्ति कराता है ॥ ३१ ॥ प्र० ॥ बुद्धि आदिक कितने प्रकारके हैं ॥ उ० ॥

मूल ॥

करणंत्रयोदशविधंतदाहरणधारणप्रकाशकरं ॥
कार्यंचतस्यदशधाहार्यंधार्यंप्रकाश्यंच ॥ ३२ ॥

अन्वय पदार्थ

करणं = करण जो महदादिक है
त्रयोदशविधं = तेरह प्रकारका है
तत् = सो करण
आहरणधारणप्रकाशकरं = आहरण धारण प्रकाशकरना
कार्यंचतस्य = तिसका कार्य जो है
दशधा = दश प्रकारका है
आहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च = आहार्य धार्य प्रकाश्य

भावार्थ

करणं त्रयोदशविधं ॥ दश इन्द्रिय मन बुद्धि अहंकार ये तेरह प्रकारका करण है अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय और तीन बुद्धी आदिक ये त्रयोदशकरण कहलाते हैं सो आहरण धारण प्रकाशको करते हैं तिनमें आहरण धारणको कर्मेन्द्रिय करते हैं और प्रकाशको ज्ञानेन्द्रिय करते हैं आहरण नाम नाम प्राप्ति

करनेका है सो कर्मेन्द्रिय अपने गमनादि व्यापार करके प्राप्त करतेहैं और ज्ञानेन्द्रिय विषय को प्रकाश याने प्रगट करते हैं ॥ कार्यंचतस्यदशधा॥ तिस त्रयोदशविध करणका कार्य दशप्रकार का है ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध और वचन आदान विहरण उत्सर्ग आनंद ये दश प्रकारका कार्य ज्ञानेन्द्रियों करके प्रकाशित को कर्मेन्द्रिय आहरण करते हैं और धारण भी करते हैं ॥ ३२ ॥

मूल ॥

अंतःकरणंत्रिविधं दशधावाह्यंत्रयस्याविषयाख्यं ॥
साम्प्रतकालंवाह्यंत्रिकालमाभ्यन्तरंकरणम् ॥३३॥

अन्वय	पदार्थ
अंतःकरणं	मन बुद्धि अहंकार ये
त्रिविधं	तीन अंतरकरण हैं
त्रयस्य	तीन अन्तरकरणों का
दशधा	दशप्रकार का
वाह्यं	वाह्य
विषयाख्यं	विषयभोग जो है
सांप्रतकालं	वर्त्तमानकालमेंहीं होता है
आभ्यंतरं	अंतर
करणं	करण का
वाह्यं	वाह्यभोग
त्रिकालं	तीनों कालमें होता है

भावार्थ

अंतःकरणंत्रिविधं ॥ शरीर के भीतर जो करणहैं मन बुद्धि

अहंकार सो तीनहीं प्रकार के हैं और वाह्य करण दश प्रकारका है सो वाह्य दश जो इन्द्रियहैं उनके विषयों के ग्रहण करने का संकल्पभी ये तीनहीं करते हैं इस वास्ते तीनों केही दश वाह्य विषयकहे हैं ॥ सो वाह्य दश इन्द्रिय वर्त्तमान कालके विषयको ग्रहण करते हैं जैसे कि श्रोत्र वर्त्तमानहीं शब्दको सुनता है अतीत भविष्यत् को नहीं सुनता है और चक्षुभी वर्त्तमानहीं रूपको देखता है भूत भविष्यत् को नहीं देखता है त्वगिन्द्रिय वर्त्तमानहीं स्पर्शको ग्रहण करता है जिह्वा वर्त्तमानहीं रसको नासिका वर्त्तमानहीं गन्धको ग्रहण करती है भूत भविष्यत्को नहीं इसी तरह कर्मेन्द्रियभी वर्त्तमानहीं विषयका ग्रहण करते हैं ॥ वाग् वर्त्तमानहीं शब्द का उच्चारण करतीहै अतीत अनागतका नहीं करती है ॥ और पाणी जो हाथ हैं सो वर्त्तमानहीं घटको ग्रहण करते हैं ॥ पाद वर्त्तमानहीं मार्गको चलते हैं और पायू उपस्थ भी वर्त्तमानहीं उत्सर्ग आनंद को करते हैं अतीत अनागत को नहीं करते हैं ॥ इस रीतिसे वाह्य करणोंको वर्त्तमानकालिक कहा है अब अभ्यंतर करणको त्रिकालक दिखातेहैं ॥ बुद्धि वर्त्तमान घटको निश्चय करतीहै और अतीत अनागत घटको भी विषय करती है अहंकार वर्त्तमानमें अभिमान को करता है तथा अतीत अनागत विषयमें भी अभिमानको करता है और मन भी वर्त्तमान पदार्थ का संकल्प करता है तथा अतीत अनागत का भी करता है ॥ और दृष्टांतको दिखाते हैं। जैसे नदी के किनारे गिरेहुवेको देखकर ज्ञान होता है जो ऊपर कहीं वृष्टिहुई होगी येतो भूतकालका उदाहरण है वर्त्तमानका उदाहरण धूमको देखकर पर्वत में वह्निका ज्ञान होता है धूम दिखाता है वह्नि जरूर है ॥ भविष्यत्का उदाहरण ॥ चींटियों की पंक्ति के

बिलसे निकलते देखकर वृष्टिका ज्ञान होताहै वृष्टि अवश्य होगी ॥ इस रीति से अंतर करण जो मन बुद्धि अहंकारहैं तीनों काल के विषय को विषय करतेहैं ॥ ३३ ॥ अब ये वार्ता दिखलाते हैं कौन इन्द्रिय स्थूल को विषय करतेहैं और कौन सूक्ष्मको विषय करतेहैं ॥

मूल ॥

बुद्धीन्द्रियाणितेषांपञ्चविशेषाविशेषविषयाणि ॥
वाग्भवतिशब्दविषयाशेषाणिपञ्चविषयाणि३४॥

अन्वय पदार्थ

बुद्धीन्द्रियाणि = ज्ञानेन्द्रिय जो हैं
तेषां = तिनके मध्य में
पंच = पांच जो हैं
विशेषाविशेषविषयाणि = स्थूलसूक्ष्मकोविषयकरते हैं
वाग् = वाग् इन्द्रिय
भवति = होती है
शब्दविषया = शब्दविषयणि ॥
शेषाणितु = पुनः शेष जो कर्मेन्द्रिय हैं
पञ्चविषयाणि = शब्दादिकवालेको विषयकरते हैं

भावार्थ

ज्ञानेन्द्रिय जो पांचहैं सो सविशेष विषयको ग्रहण करते हैं सविशेष नाम स्थूलविषयका है निर्विशेष नाम सूक्ष्म विषय का है तात्पर्य यह है मनुष्योंके जो ज्ञानेन्द्रिय पांचहैं सो सुख दुःख मोह इन्हों करके युक्त शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पांच विषयों को वि-

षय करते हैं और देवतों के जो ज्ञानेन्द्रियहैं सो निर्विशेष विषयों को प्रकाश करतेहैं और योगीके जो ज्ञानेन्द्रिय हैं सो सूक्ष्मतन्मात्रा आदिकों को भी प्रकाश करते हैं और स्थूल विषयों को भी प्रकाश करतेहैं और कर्मेन्द्रियोंके मध्य में वागिन्द्रिय जो है सो शब्दकोही विषय करती है और जैसे मनुष्य वागिन्द्रिय करके श्लोकोंका उच्चारण करते हैं तैसे देवताभी वागिन्द्रिय करके श्लोकों का उच्चारण करते हैं इसवास्ते देवतों और मनुष्योंका वागिन्द्रिय तुल्यही है और वाग् से भिन्न जो बाकी के कर्मेन्द्रियहैं पाणि पाद पायु उपस्थ ये सब शब्दादिक पंच विषयोंवाली वस्तुकाही ग्रहण करते हैं क्योंकि ये आपभी शब्दादिक पंच विषयोंवाले हैं इसवास्ते पंच विषयोंवाली वस्तुका ही ग्रहण भी करते हैं हाथ शब्दादिकों वालीही वस्तु का ग्रहण करता है पाद शब्दादिकों वाली भूमिपही विहार करता है पायु इन्द्रिय भी शब्दादिकों करके युक्तही मलका त्याग करता है उपस्थेन्द्रिय पंच शब्दादिकों करके युक्त वीर्य से प्रजा उत्पत्ति करता है इसरीति से इन्द्रिय स्थूल सूक्ष्मका ग्रहण करते हैं ३४ ॥

मूल ॥

सान्तःकरणाबुद्धिः सर्वंविषयमवगाहतेयस्मात् ॥
तस्मात्त्रिविधंकरणं द्वारिद्वाराणिशेषाणि ॥३५॥

अन्वय पदार्थ

सान्तःकरणाबुद्धिः = अहंकार और मनके सहित बुद्धिहै

यस्मात् = जिसकारणसे

सर्वं = संपूर्ण
विषयं = विषयों को
अवगाहते = विषय करती है
तस्मात् = तिसकारणसे
त्रिविधं = तीनप्रकारका जो
करणं = करण है अंतर
द्वारि = द्वारवाला है
शेषाणि = बाकी के जो इंद्रिय हैं
द्वाराणि = तिसकेद्वार हैं

भावार्थ

सान्तःकरणाबुद्धिः ॥ जिसकारण ते अहंकार और मनके सहितबुद्धिः संपूर्ण विषयों को विषय करती है अर्थात् तीनोंकालों में शब्दादिक विषयों को ग्रहण करती है तिसी कारण से ये तीन प्रकारके जो करण हैं सो द्वारवाले हैं और शेष जो इन्द्रिय हैं वह द्वार हैं क्योंकि इन्द्रियोंद्वारा ही ये बुद्धिआदिक विषयों को ग्रहण करते हैं ॥ ३५ ॥

मूल ॥

एतेप्रदीपकल्पाःपरस्परविलक्षणागुणविशेषाः ॥
कृत्स्नंपुरुषस्यार्थं प्रकाश्यबुद्धौप्रयच्छन्ति ॥ ३६ ॥

अन्वय पदार्थ

एतेगुणविशेषाः = ये जो गुण याने इन्द्रियविशेष हैं
प्रदीपकल्पाः = दीपक के तुल्य हैं
परस्परविलक्षणा = और परस्पर विलक्षण भी हैं

कृत्स्नं = संपूर्ण
प्रकाश्य = विषयोंको
पुरुषस्य = पुरुष के
अर्थे = अर्थ
बुद्धौ = बुद्धिमें
प्रयच्छन्ति = अर्पणकरते हैं

भावार्थ

ये जो गुणविशेष याने इन्द्रियविशेष पूर्व कहे हैं सो दीपक की तरह विषयों के प्रकाशकहैं और परस्पर विलक्षण भी हैं और भिन्न भिन्न विषयोंवाले भी हैं अर्थात् हरएक इन्द्रिय का विषय पृथक् पृथक्है और सत्वादिक गुणों से उत्पन्नभीहुवे हैं इसीवास्ते गुण विशेष कहेजाते हैं ॥ और संपूर्ण ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय और अहंकार तथा मन अपने अपने विषयको पुरुषकी भेट के लिये बुद्धी में स्थितकरदेते हैं इसीवास्ते बुद्धिमें स्थित संपूर्ण विषयों को तथा सुखादिकों को पुरुषजानलेताहै ॥ ३६ ॥

मूल-सर्वंप्रत्युपभोगं यस्मातपुरुषस्य साधयतिबु द्धिः ॥ सैवचविशिनष्टिपुनः प्रधानपुरुषान्त रंसूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

अन्वय पदार्थ

यस्मात् = जिसकारणतें
सर्वंप्रति = सबपुरुषों के प्रति
उपभोगं = भोगकीसामग्रीको
पुरुषस्य = पुरुषकेलिये

बुद्धिः = बुद्धि जोहै सो
साधयति = सिद्ध करतीहै
सैव च पुनः = वही बुद्धि फिर
विशिनष्टि = करती है
प्रधानपुरुषांतरं = प्रधानपुरुषके
सूक्ष्मं = सूक्ष्मभेद करतीहै

भावार्थ

जिसकारणते तीनों काल में संपूर्ण देवता मनुष्य तिर्यगादिकों के प्रति उपभोगको ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियोंद्वारा अंतःकरण के सहित याने अहंकार और मनके सहित बुद्धि सिद्ध करती है वही बुद्धि प्रधान और पुरुषके तथा विषयके विभागको भी करती है॥ ये प्रकृति तो सत्व रज तम तीनों गुणों की एकसाम्यावस्था है अर्थात् तीनों गुणोंकी साम्यवस्था नामहीं प्रकृति है॥ और ये बुद्धिहै ये अहंकार है ये पांच तन्मात्रा हैं ये एकादश इन्द्रिय हैं ये पांच महाभूतहैं और इनसब से अतिरिक्त यह पुरुष है इसप्रकारके विभाग का बोध बुद्धि कराती है और येही बोध मोक्षका साधनहै॥३७॥ करणों के विभाग को दिखादिया अब विशेष अविशेष विषयों के विभाग को दिखाते हैं॥

मूल–तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्योभूतानिपञ्चपञ्चभ्यः॥ एतेस्मृताविशेषाःशान्ताघोराश्चमूढाश्च॥ ३८॥

अन्वय पदार्थ
तन्मात्राणि = तन्मात्रा जोहैं

अविशेषाः = सूक्ष्महैं
तेभ्योपञ्चभ्यः = तिनपांचतन्मात्रसे
भूतानि = महाभूत
पञ्च = पांच उत्पन्न होतेहैं
एतेपञ्च = येपांचमहाभूत
विशेषाः = स्थूल
स्मृता = कथनकियेहैं
शान्ता = सुखदायकहैं
घोराः = दुःखदायकभीहैं
मूढाः = मोहदायकभीहैं

भावार्थ

अहंकारसे जो पांच तन्मात्रा उत्पन्न होते हैं ।। शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र ।। रूपतन्मात्र ।। रसतन्मात्र ।। गन्धतन्मात्र ।। ये पांच सूक्ष्म कहे जातेहैं ।। देवतोंके ये पञ्चतन्मात्रा सुखदायक विषयहैं दुःख और मोह से रहित हैं फिर तिन पञ्चतन्मात्रों से पृथिवी आदि पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं ।। ये पांच महाभूतविशेष याने स्थूल हैं ।। गन्धतन्मात्रा से पृथिवी रसतन्मात्रा से जल रूपतन्मात्रा से तेज स्पर्शतन्मात्रा से वायु शब्दतन्मात्रा से आकाश इस रीति से पञ्चतन्मात्रा से पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं ।। ये जो विशेष याने स्थूलविषयहैं सो मनुष्यों को तो शान्त सुखदायक हैं और घोर दुःखदायक हैं मूढ़ मोहके जनक हैं ॥ जैसे आकाश किसीको गृहके बाहर निकलने से सुखदायक होताहै ।। अर्थात् जो तंगमकानके भीतर संकोचको प्राप्त होरहाहै उसको बाहर निकले पर आकाश सुख देताहै वही आकाश शीत उष्ण वात वर्षा धूपा

दिकों करके युक्त हुआ हुआ दुःखदायक होजाता है फिर वही आकाश जो रस्ता भूल गयाहै उसको दिशाके भ्रम से मूढ़ताका हेतु होताहै इसीप्रकार जो गर्मी करके पीड़ित होरहाहै उस्को वायु सुखदायक होती है और शीत करके पीड़ितको दुःखदायी होती है और धूली करके मिलीहुई मोहका जनक होती है इसीप्रकार तेज जल पृथिवी में भी घटा लेना ॥ ३८ ॥

मूल ॥

सूक्ष्मामातृपितृजाःसहप्रभूतैस्त्रिधाविशेषाःस्युः ॥
सूक्ष्मास्तेषांनियतामातृपितृजानिवर्तन्ते ॥ ३९ ॥

अन्वय पदार्थ

सूक्ष्मा = सूक्ष्म तन्मात्रासे उत्पन्न होने से लिंग शरीर का नाम सूक्ष्मा है

मातृपितृजाः = मातापिता के वीर्य से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है

सहप्रभूतैः = वह वीर्य भूतोंका जो अन्न तिससे उत्पन्न होकर

त्रिधाविशेषाःस्युः = फिर नाड़ी रुधिर मांस करके तीन प्रकार का होता है

तेषां = तिनतन्मात्रासे जो

सूक्ष्माः = सूक्ष्मशरीर होताहै

नियता = वहनित्य है

मातृपितृजा = मातापितासेजन्य जो स्थूलशरीरहै

निवर्तन्ते = सो नाशको प्राप्त होजातेहैं

भावार्थ

सूक्ष्म तन्मात्रासे जो बनाहोवे उसका नाम सूक्ष्महै याने सूक्ष्म शरीर है महदादिकों करके युक्तहोनेसे तिसीका नाम लिंग शरीर भी है ज्ञानकी प्राप्तिपर्यंत वह नित्य है क्योंकि जबतक ज्ञाननहीं होता तबतक वह लिंग शरीर जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्तभी होता है और माता पितासे जन्य जो स्थूल शरीर तिसका वर्धकभी लिंगही शरीरहै क्योंकि जिसकालमें माता पिताका संयोग होताहै तिसकालमें पिताके वीर्यद्वारा माताके उदरमें जब प्रवेश करता है और माताके रक्त तथा पिताके वीर्यके मिलने से जो स्थूलशरीर बनताहै वह शरीर सूक्ष्मके सम्बन्धसेही बढ़ता है और माताकरके भक्षणकियेहुये जो नानाप्रकारके अन्न तिनके रसोंकरके स्थूल शरीर वृद्धिको प्राप्त होताहै और पृष्ठ उदर जंघा कटि छाती शिर ये तो षट् कौशिक हैं अर्थात् इनका नाम षट्कौशिक है और पांच भूतोंका कार्य है और माताके रक्तसे रोम रक्त मांस ये तीन होते हैं और पिताके वीर्यसे नाड़ी अस्थि मज्जा ये तीन होते हैं इन छै करके स्थूल शरीर बनता है आकाश इसको गर्भमेंही बढ़नेको अवकाश देता है वायु बढ़ाती है तेज पाक करता है जल संग्रह करता है पृथ्वी धारण करती है इसरीतिसे संपूर्ण अवयवोंकरके युक्तहोकर स्थूलशरीर फिर माताके शरीरसे बाहर निकलता है ॥ सूक्ष्म शरीर एक विशेष है और स्थूल शरीर ये दूसरा विशेष है और पर्वत वृक्षादिक ये तीसरा विशेषहै ये तीन विशेष हैं अर्थात् इनका नाम तीन विशेष हैं ॥ अब इनतीनोंमेंसे नित्य अनित्यको बताते हैं ॥ सूक्ष्मास्तेषांनियताः ॥ सूक्ष्म जो शरीर है सो तो नित्य है वही कर्मोंके वश्यसे पशु मृग पक्षी सर्प और स्थावरादि

योनियोंमें जाता है और धर्मके वशसे चन्द्रलोकादिकों में गमन करता है इसवास्ते लिंग शरीरही जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होता है यावत्पर्यंत आत्मज्ञान नहीं उत्पन्न होता जब आत्मज्ञान उत्पन्न होता है तब विद्वान् सूक्ष्म शरीरका भी त्यागकरके मोक्षको प्राप्त होजाताहै इसीवास्ते सूक्ष्म शरीरको नित्य कहा है और माता पितासे जन्य जो स्थूल शरीर है सो प्राणोंके वियोग कालमेंही नष्ट होजाताहै इसीसे उसको अनित्य कहा है॥ और पर्वत स्थावरादिकभी काल पाकर नष्ट होजाते हैं वहभी अनित्य हैं॥३९॥

मूल ॥

पूर्वोत्पन्नमसक्तंनियतंमहदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् ॥
संसरतिनिरुपभोगंभावैरधिवासितंलिङ्गम् ॥ ४० ॥

अन्वय पदार्थ

पूर्वोत्पन्नं = सबसे पूर्व लिंगशरीरही उत्पन्न हुआ है

असक्तं = कहीं भी सूक्ष्म शरीर प्रथम संयुक्त न होता भया

महदादिसूक्ष्मपर्यंतं = महत्तत्त्वसे लेकर तन्मात्राका ये बना है

नियतं = और यावत्पर्यंत ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है तबतक नित्य है

भावैः = जन्मांतरोंके संस्कारों की वासना करके

अधिवासितम् = बसायाहुआ है याने भरा है ॥

लिंगम् = ये जो लिंगशरीर लय होने वाला है
निरुपभोगं = भोगसे रहित हुआ हुआ
संसरति = गमन करता रहता है

भावार्थ

जिसकालमें प्रधानादि सर्ग ये स्थूललोक नहीं उत्पन्न हुआ था तब ये सूक्ष्म शरीर प्रथमही उत्पन्न हुआथा ॥ और तब किसी भी मनुष्य तिर्यगादि योनियोंके साथ इसका सम्बन्ध नहींथा और कहीं भी इसको रुकावट नहीं थी इसीवास्ते सर्वत्रही गमन करता था ॥ तच्च महदादि सूक्ष्मपर्यंतं महत्तत्त्व है आदिमें जिनके ऐसे जो अहंकार मन पञ्चतन्मात्रा सूक्ष्मपर्यंत जो सूक्ष्म तत्त्व हैं तिन्हों करके बना जो सूक्ष्म शरीर है सो निरुपभोगं भोगसे रहित हुआ हुआ तीनों लोकोंमें गमन करता है पश्चात् माता पितासे जन्य स्थूलकरके वृद्धिको प्राप्तहोकर क्रियाधर्म्म को ग्रहणकरके भोगोंमें समर्थ होता है और भोगोंकी वासनाकरके युक्तहुआ हुआ अर्थात् अनेक जन्मोंके भोगोंकी वासनाकरके भराहुआ लिंगशरीर प्रलयकालमें महत्तत्त्वसे लेकर सूक्ष्म करणोंके सहित प्रधान में लय होजाताहै तब प्रकृतिमें बन्धनकरके बन्धायमान हुआ हुआ गमनादिक क्रियामें असमर्थ होताहै फिर सृष्टिकालमें वही लिंग शरीर जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होताहै॥ ४० ॥ प्र० ॥ किस प्रयोजनके लिये त्रयोदशविध करणकरके युक्त हुआहुआ लिंग शरीर गमनाऽगमनको करता है ॥ उ० ॥

——*——

मूल ॥

चित्रंयथाश्रयमृतेस्थाण्वादिभ्योयथाविनाछाया॥
तद्वद्विनाविशेषैर्नतिष्ठतिनिराश्रयंलिंगम् ॥ ४१ ॥

अन्वय पदार्थ

चित्रं = चित्र
यथा = जैसे
आश्रयं = आश्रयसे
ऋते = विना
यथा = जैसे
विना = बगैर
स्थाण्वादिभ्यो = स्थाणुआदिकोंसे
छाया = छाया नहीं रहसक्तीहै
तद्वत् = तैसेही
विनाविशेषैः = विनातन्मात्राके
नतिष्ठति = नहीं रहसक्ताहै
निराश्रयं = विनाआश्रयके
लिंगम् = लिंगशरीरभी

भावार्थ

जैसे कुड्य जो दीवार तिसके विना चित्र स्थिर नहीं रहसक्ता है और वृक्षादिकोंसे विना छाया नहीं रहसक्ती है आदिपद करके शीतता विना जलके नहींरहसक्ती है उष्णता विना अग्निके नहीं रहसक्ती है वायुसे विना स्पर्श आकाशसे विना अवकाश पृथिवी से विना गन्ध नहीं रहसक्ती है दार्ष्टांतमें विना विशेषों के तन्मात्रा

के लिंग शरीरभी नहीं रहसक्ताहै और स्थूल शरीरभी विना सूक्ष्म शरीर के नहीं रहसक्ताहै और सूक्ष्म शरीरभी एक स्थूल देहको त्याग के दूसरेको आश्रय करता है वह भी आश्रय से विना नहीं रहसक्ता है ॥ ४१ ॥

मूल ॥

पुरुषार्थहेतुकमिदंनिमित्तनैमित्तिकप्रसंगेन ॥
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद्व्यवतिष्ठतेलिंगम् ॥ ४२ ॥

अन्वय		पदार्थ
पुरुषार्थहेतुकं	=	पुरुष के अर्थ
इदं	=	यह लिंगशरीर
निमित्तनैमित्तिक प्रसंगेन	=	निमित्तधर्मादि नैमित्तिकस्थूल शरीर इनके सम्बन्ध करके
प्रकृतेर्विभुत्वयोगात्	=	और विभुप्रकृतिकेसंयोगसे
नटवत्	=	नट जो बहुरूपिया तिसकीतरह
व्यवतिष्ठेतलिंगं	=	लिंगशरीर व्यवहारको करता है

भावार्थ

पुरुषके लिये अपनी कर्तव्यता को जानकर प्रकृति प्रवृत्त होती है ॥ सो कर्तव्यता प्रकृति की दोप्रकारकी है एक तो शब्दादि विषयों का ज्ञान दूसरा गुणोंसे पुरुषका भेदज्ञान अर्थात् ब्रह्मलोकपर्यंत जितने भोग हैं उन भोगोंकी पुरुषको प्राप्ति करनी दूसरा गुणोंसे पुरुषको भेद ज्ञान कराकर मोक्षकी प्राप्ति करनी इसी वास्ते प्रधान की प्रवृत्ति होती है ॥ इसी वास्ते मूल में कहा है ॥ पुरुषार्थहेतुकमिदं प्रवर्तते ॥ पुरुषका अर्थ याने प्रयोजनहीं है कारण

जिसमें उसीका नाम है पुरुषार्थहेतुकं सो तिसी के लिये सूक्ष्म शरीरकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ सो निमित्त नैमित्तिक प्रसंगकरके होती है ॥ निमित्त कौन हैं धर्मादि नैमित्तिक ऊर्ध्वगमनादि इन को प्रसंग करके प्रवृत्ति होती है सो इनको आगे दिखावैंगे और प्रकृतिके विभुत्वपने के सम्बन्ध से भी लिंगशरीर की प्रवृत्ति होती है ॥ यथा जैसे राजा अपनेराज्य में विभु है इसीवास्ते जो चाहता है वही करता है तैसे ही प्रकृतिको भी सर्वत्र विभु होनेसे और पूर्वोक्त निमित्त नैमित्तिक के प्रसंग से पृथक् पृथक् देहों के धारण करने में लिंगकी व्यवस्था को प्रकृतिही करतीहै और पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय मन बुद्धि अहंकार इन तेरहकरणों करकेयुक्त जो लिंग शरीर है वही मनुष्य देव तिर्यक् योनियोंमें व्यवहार को करता है नटकी तरह जैसे नटुवा पड़देके भीतर प्रवेश करके देवताहोकर बाहर निकल आता है फिर मनुष्य होकर निकल आता है पुनः पुनः विलक्षण रूपोंको धारण करता है इसीप्रकार लिंग शरीर भी धर्मादि निमित्तों करके गर्भ के भीतर प्रवेश करके कभी स्त्री कभी पुरुष कभी पशुआदि रूपोंको धारणकरताहै॥ ४२ ॥ पूर्वकारिका में कहा है संस्कारों करके अधिवासित हुवाहुवा लिंगशरीर जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होता है अब उन संस्कारोंकोदिखाते हैं॥

मूल–सांसिद्धकाश्चभावाः प्राकृतिकावैकृतिका-श्चधर्माद्याः ॥ दृष्टाःकरणाश्रयिणःकार्याश्रयिणश्चकललाद्याः ॥ ४३ ॥

अन्वय पदार्थ

धर्माद्याः = धर्मादिक जो

भावाः = भाव हैं
सांसिद्धकाश्च = सांसिद्धक
प्राकृतिका = प्राकृत चपुनः
वैकृतिकाश्च = वैकृत
दृष्टाः = देखे हैं
करणाश्रयिणः = करणोंकेआश्रितहैं
कललाद्याः = कललादिक जो हैं
कार्याश्रयिणश्च = सो कार्यके आश्रय है

भावार्थ

भावास्त्रिविधाश्च ॥ तीनप्रकार के भाव याने पदार्थ हैं एकतो सांसिद्धक है दूसरा प्राकृतहै तीसरा वैकृतहै ॥ सो धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य का नामहीं भाव है कपिल भगवान् को जो कि सृष्टिके आदिकाल में ब्रह्माजी के पुत्रहुवे हैं उनके जन्मकाल में ही धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य ये चारों साथही उत्पन्नहुवे थे इसवास्ते ये सांसिद्धक कहेजाते हैं अब प्राकृत भावों को दिखाते हैं जो उपायों और अनुष्ठानोंकरके धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं उनका नाम प्राकृत है सो ब्रह्माजी के सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार ये चारपुत्र हुवेहैं उनको षोडश वर्षकी आयु में ही साधनोंकरके धर्मादि भाव उत्पन्नहुवे सो प्राकृत कहेजाते हैं ॥ अब वैकृत को दिखाते हैं जैसे आचार्य्य की मूर्तिको निमित्त करके अस्मदादिकोंको ज्ञानादि उत्पन्नहोतेहैं याने प्रथमज्ञान उत्पन्न होताहै ज्ञान से वैराग्य वैराग्य से धर्म धर्म से ऐश्वर्य होता है वह आचार्य की मूर्त्ति भी जिस वास्ते विकृतिहै एक विकारहै अर्थात् भूतोंकाकार्य है इसी वास्ते अस्मदादिकों के जो ज्ञानादि भाव हैं वह वैकृत कहे

जाते हैं जिनभावों करके अधिवासित हुवाहुवा अर्थात् तिनभावों की वासना करके भराहुवा जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होता है ये जो चार ज्ञानादि भाव कहे हैं सो सात्विक हैं सत्वगुणका कार्य हैं और इनसे विपरीत अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य ये चार भाव तामसहैं तमोगुणका कार्य हैं सब मिलाकर आठ भाव हैं और करणाश्रयहैं अर्थात् करण जो बुद्धि तिसके आश्रित रहते हैं ॥ इसी वास्ते बुद्धिका लक्षण किया है अध्यवसायो बुद्धिधर्मोज्ञानमिति और कार्य जो देहहै तिसका आश्रय कललादिकहै जो कि माता पिताके वीर्य से उत्पन्न होता है तैसेही कौमार यौवन वृद्धत्वादि जो भावहैं वह अन्नके रससे उत्पन्न होते हैं इसी वास्ते उनको कार्य के आश्रित कहते हैं ॥ ४३ ॥ अब निमित्त नैमित्तिक को दिखाते हैं ॥

मूल–धर्मेणगमनमूर्ध्वंगमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण॥
ज्ञानेनचापवर्गोविपर्ययादिष्यतेबन्धः॥४४॥

अन्वय पदार्थ

धर्मेण = धर्मकरके
गमनं = गमन होताहै
ऊर्ध्वं = ऊपरकेलोकों में
अधर्मेण = अधर्मकरके
अधस्तात् = नीचेकेलोकों में
गमनं = गमन
भवति = होता है
च = चपुनः

ज्ञानेन = ज्ञानकरके
अपवर्गो = मोक्ष होतीहै
विपर्ययात् = अज्ञान से
बन्धः = बन्ध
इष्यते = कथन कियाहै

भावार्थ

धर्मेण गमनमूर्ध्वं ॥ धर्म करके ऊपरके आठ लोकोंमें गमनहोताहै ॥ ब्रह्मलोक प्राजापत्य लोक चन्द्रलोक इन्द्रलोक गांधर्वलोक यक्ष राक्षसलोक पिशाचलोक इन लोकों में सूक्ष्म शरीर ही गमन करता है और अधर्म करके पशु पक्षि सर्प स्थावरादि योनियों में गमन होता है ॥ और आत्मज्ञान करके अपवर्ग याने मोक्ष होती है सो ज्ञान करके पचीस तत्त्वोंका ज्ञान लेना ॥ और विपर्यय से याने अज्ञान करके बन्ध होती है सो इसी बन्धको नैमित्तिक प्राकृत वैकारिक दाक्षिणिक बन्ध कहते हैं और प्राकृत बन्ध करके वैकारिक बन्ध करके दाक्षिण करके जो बन्धायमान होताहै वह मुक्त नहीं होता और जो आत्मज्ञानके लिये प्रकृतिकी उपासना करते हैं वह सौहजार वर्ष जगत्में भोगों को भोक्ताहै और जो प्रकृति के विकार हैं इन्द्रिय अहंकार बुद्धि इनकी जो उपासना करते हैं वह दशमन्वंतर भोगों को भोगते हैं इसी का नाम वैकृतबन्धहै और जो ज्ञानके लिये इष्टाऽपूर्त कर्मों को ही करते रहते हैं वह सदैवही संसारचक्र में भ्रमते रहते हैं इस का नाम दाक्षिणकबन्धहै इस तीन प्रकार की बन्धमें जो फँसा है वह कदापि मुक्त नहीं होता है ॥ ४४ ॥

मूल ॥

वैराग्यात्प्रकृतिलयःसंसारोभवतिराजसाद्रागात्
ऐश्वर्यादविघातोविपर्ययात्तद्विपर्यासः ॥ ४५ ॥

अन्वय	पदार्थ
वैराग्यात्	= केवलवैराग्यसे
प्रकृतिलयः	= प्रकृतिमें लयहोताहै
राजसात्	= राजस से
रागात्	= रागसे
संसारो	= संसार
भवति	= होता है
ऐश्वर्यात्	= ऐश्वर्य से
अविघातः	= इसकी रुकावट कहीं भी नहीं होती
तत्	= तिस अविघातके
विपर्ययात्	= विपर्ययसे
विपर्यासः	= अनैश्वर्य होताहै

भावार्थ

जैसे किसी पुरुषको वैराग्य तो है परन्तु तत्त्वज्ञान नहीं है वह अज्ञानपूर्वक वैराग्य कहा जाता है सो ऐसे वैराग्यसे मोक्षको नहीं प्राप्त होता है॥ किंतु प्रधान बुद्धि अहंकार पंचतन्मात्रा इन आठ प्रकृतियोंमेंही मरकरके लय होताहै अर्थात् फिर संसारकोही प्राप्त होताहै और जो ये राजसराग है रजोगुणका कार्य जो रागहै मैं यज्ञकरूं यज्ञमें दक्षिणाको देऊं जिसके करनेसे इसलोकमें और परलोकमें अपूर्व मनुष्य सुखको और देवतोंके सुखको अनुभव

करूं इसप्रकारके राजसरागसे भी पुनः पुनः जन्ममरणरूपी संसारकोही प्राप्त होताहै और जो आठ प्रकारका ऐश्वर्य है अणिमादिक तिसकरके इसकी गतिकी रुकावट कहींभी नहीं होती है अर्थात् ब्रह्मलोकादि स्थानोंमें भी इसके ऐश्वर्यका नाशनहीं होता है ॥ और अनैश्वर्यसे तिस ऐश्वर्यके अविघातका विघात याने नाश होताहै किंतु सर्वत्रही इसकी गति रुकजाती है और निमित्त के सहित नैमित्तिक सोलहप्रकारका कथन करदिया ॥ अब तिस के स्वरूपको कहेंगे ॥ ४५ ॥

मूल ॥

एषप्रत्ययसर्गोविपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्धाख्यः ॥
गुणवैषम्यविमर्द्दात्तस्यचभेदास्तुपंचाशत् ॥४६॥

अन्वय — पदार्थ

एषप्रत्ययसर्गः = यह जो षोडशप्रकारका सर्ग है
विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्धाख्यः = विपर्यय अशक्ति तुष्टि भेदसे हैं
गुणवैषम्यविमर्द्दात् = गुणोंकी न्यून अधिकतासे
तस्य = तिसप्रत्ययसर्गके
च = चपुनः
भेदास्तु = पुनःभेद
पंचाशत् = पचास हैं

भावार्थ

धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य येनिमित्तिक तथा नैमित्तिक फल के भेदसे सोलह होते हैं सो इन्हीं

का नाम प्रत्ययसर्ग है प्रत्यय नाम बुद्धिका है तिस बुद्धिकी ये सृष्टि है अर्थात् बुद्धिसेही इनकी उत्पत्ति होती है इसीवास्ते इन को प्रत्ययसर्ग कहा है फिर वह प्रत्ययसर्ग चार प्रकारका होताहै विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि इनभेदों से तिस में विपर्यय नाम संशयकाहै उसीको अज्ञान भी कहते हैं जैसे किसी ने मंद अंधकारमें स्थाणु को देखा उसको संशय हुआ ये स्थाणुहै या पुरुष है इसीकानाम विपर्यय ज्ञान है ॥ और तिसी स्थाणुको पुनःदेखकरके संशय के छेदन को समर्थ न होना इसीकानाम अशक्ति है और फिर तिसी स्थाणु के जानने के लिये और संशयके छेदन के वास्ते यत्न से रहित होजाना किंतु हमको इससे क्या प्रयोजन है ऐसा जानकरके जो तोष करलेनाहै इसकानाम तुष्टि है और जब आनंदित इन्द्रिय होकर तिसी स्थाणु पर आरूढ़ बल्ली को या पक्षी को देखताहै तब तिसको सिद्धी होतीहै ये स्थाणुही है ये चतुर्थ सिद्धी नामक है ॥ इसरीतिसे चारप्रकार के प्रत्ययसर्गका गुणोंकी न्यून अधिकतासे पचास भेदहोजाते हैं ॥ जो ये सत्व रज तम गुणोंकी वैषम्य और विमर्द है अर्थात् न्यून अधिकता है तिसी न्यून अधिकता करके प्रत्ययसर्गके पचास भेद होजाते हैं कहीं तो सत्वगुण उत्कट होजाताहै तब रजतम दोनों उदासीन होजाते हैं और जब रजोगुण उत्कट होता है तब सत्व तम उदासीन होते हैं जब तमोगुण उत्कट होताहै तब सत्व रज उदासीन होजाते हैं ॥ ४६ ॥

मूल ॥

पंचविपर्ययभेदाभवन्त्यशक्तिश्चकरणवैकल्यात्
अष्टाविंशतिभेदास्तुष्टिर्नवधाऽष्टधासिद्धिः ॥ ४७ ॥

अन्वय पदार्थ

विपर्ययभेदा = विपर्ययके भेद
पंच = पांच
भवन्ति = होते हैं
अशक्तिः = अशक्ति जो है
च = चपुनः
करणवैकल्यात् = करणोंकी विकलतासे
अष्टाविंशतिभेदाः = अट्ठाईस प्रकारकी है
तुष्टिः = तुष्टि जो है सो
नवधा = नव प्रकारकी है
अष्टधा = आठ प्रकारकी
सिद्धिः = सिद्धि है

भावार्थ

तम मोह महामोह तामिस्र अन्धतामिस्र ये पांच विपर्ययके भेद हैं इन भेदोंके अवांतर भेदोंको आगे कहेंगे और अशक्तिके अट्ठाईस भेद हैं ॥ करणोंकी विकलतासे तिनको भी कहेंगे और तुष्टिके नवभेद हैं ये राजसज्ञान हैं ॥ और आठ प्रकारकी सिद्धि है ये सात्विक ज्ञान हैं इनसबका निरूपण क्रमसे आगे करैंगे॥ ४७॥

मूल ॥

भेदस्तमसोऽष्टविधोमोहस्यचदशविधोमहामोहः
तामिस्रोऽष्टदशधातथाभवत्यन्धतामिस्रः ॥ ४८ ॥

अन्वय पदार्थ

तमसो = तमके

अष्टविधो = आठ प्रकारके
भेदः = भेद हैं
च = चपुनः
मोहस्य = मोहका
दशविधो = दश प्रकारका भेद है
महामोहः = महामोहके भी दश
तामिस्रो = तामिस्रके
अष्टादशधो = अठारह भेद हैं
तथा = तैसेही
अंधतामिस्रः = अंधतामिस्रके भी भेद
भवन्ति = होते हैं

भावार्थ

तमके आठभेद हैं और तम नाम अज्ञानका है और प्रधान बुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा येही आठ तमके भेद हैं अज्ञानकरके युक्त इन्हीं आठ प्रकृतियोंमें लीनहुआ हुआ अपनेको मुक्त मानता है याने मैं मुक्तहोगया ये तमके आठ भेद कहे हैं परन्तु वह मुक्त नहीं होता और आठ अणिमादि सिद्धियेंही मोह के आठ भेद हैं इन्द्रादि देवताभी आठ अणिमादि सिद्धियोंको प्राप्तहोकर तिनके संगसे मोक्षको प्राप्त नहीं होते हैं किंतु ऐश्वर्य के नाशहोनेपर फिर जन्म मरणरूपी संसारकोही प्राप्तहोते हैं येही आठ प्रकारका मोह है और शब्द स्पर्श रूप रसगन्ध ये पांच विषय देवतोंको तो सुखदायक हैं और मनुष्योंको भी ये शब्दादिक विषय सुखदायक हैं परंतु इतना इनमें भेद है देवतोंके सूक्ष्म हैं मनुष्योंके स्थूल हैं इन दशोंका नामही महामोहहै और तामिस्र अठारह प्रकारका है आठ

तो अणिमादि ऐश्वर्य हैं और पांच दृष्ट विषय और पांच अनुश्रविक ये दिव्य अदिव्यभेदसे दश विषय हैं सब मिलकर अठारह हुये इनकी संपदाकरके जब पुरुष युक्त होताहै तब बड़े हर्षको प्राप्त होता है इनके वियोगसे खेदको प्राप्त होताहै येही अठारह भेद तामिस्रके हैं और पूर्वोक्त आठ अणिमादि दश विषय येही अठारह अंधतामिस्रके भी भेद हैं परंतु विषयों की प्राप्तिहुयेपर जब मरताहै या आठ प्रकारके ऐश्वर्यसे जब भ्रष्ट होता है तब तिसको महादुःख होता है सो इसीका नाम अंधतामिस्रहै तमके ८ मोहके ८ महामोहके १० तामिस्रके १८ अंधतामिस्रकेभी १८ सब मिलाकर पांचप्रकारके विपर्ययके ६२ भेदहुये ॥ ४८ ॥ अब अशक्तिके भेदों का निरूपण करते हैं ॥

मूल ॥

एकादशेन्द्रियबधासहबुद्धिबधैरशक्तिरुद्दिष्टा ॥
सप्तदशधाबुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम् ॥ ४९ ॥

अन्वय	पदार्थ
एकादशेन्द्रियबधा	ग्यारहप्रकारका तो इन्द्रियबध है
सहबुद्धिबधैः	बुद्धिके बधोंके सहित
अशक्तिः	अशक्ति अठारह प्रकारकी
उद्दिष्टा	दिखाई है
तुष्टिसिद्धीनां	तुष्टिसिद्धिके
विपर्ययात्	विपर्ययसे
बुद्धेः	बुद्धिके
सप्तदशधा	सत्तरह भेद हैं

भावार्थ

इन्द्रियोंकी विकल्पतासे अशक्तिके अट्ठाईस भेद होते हैं ये वार्ता पूर्वकहीहै सो अब दिखाते हैं ॥ एकादशेन्द्रियबधा ॥ ग्यारह तो इन्द्रियोंके बध हैं श्रोत्रका बध बहरा होना चक्षुका बध अंधा-पना नासिका का बध गंधकी प्रतीतिका अभाव होना रसनाका बध रस के ज्ञानका अभाव होना त्वगिन्द्रियका बध स्पर्शज्ञान का अभाव होजाना गूंगा पाणि इन्द्रिय का बध टुंडा होना पाद इन्द्रिय का बध मुंडाहोना गुदा इन्द्रिय का बध उदावर्तरोगहोना लिंग इन्द्रिय का बध नपुंसक होना मन इन्द्रिय का बध मंदमती होना येतो एकादश इन्द्रियों का बधहै सो बुद्धि के बधोंके सहित अट्ठाईस भेद अशक्ति के होतेहैं सो सत्तरहभेद बुद्धिके हैं सो नव प्रकार की तुष्टि है और आठ प्रकार की सिद्धिहै इनको उलटा करने से नव और आठ सत्तरह बुद्धि के बध होते हैं और पूर्वोक्त ग्यारह बध इन्द्रियों के इनमें मिलाने से सब अट्ठाईस भेद अशक्ति के हो जाते हैं ॥ ४९ ॥ अब नव प्रकार की तुष्टी को दिखाते हैं ॥

मूल--आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभा-
ग्याख्यः॥ वाह्याविषयोपरमात्पंचनवतुष्टयो
ऽभिहिताः ॥ ५० ॥

अन्वय		पदार्थ
प्रकृत्युपादान कालभाग्याख्यः	=	प्रकृतिउपादानकाल और भाग्य इन नामों वाली
आध्यात्मिकाः	=	आध्यात्मतुष्टि
चतस्रः	=	चारप्रकारकी है

विषयोपरमात् = विषयों की उपरामता से
पांचवाह्या = पांचवाह्य तुष्टिहै
नवतुष्टयो = नवप्रकार की तुष्टि
अभिहिताः = कथन करीहै

भावार्थ

आत्मनिभवाआध्यात्मिकाः ।। आत्मा में जो होने वाली होवें तुष्टि उन का नाम आध्यात्मिक है सो आध्यात्मिक तुष्टि चार प्रकारकी हैं प्रकृति १ उपादान २ काल ३ भाग्य ४ ये चारों के नाम हैं और जैसे किसीने किसीको उपदेश किया प्रकृति जो है वही जड़ चेतन के भेद को करती है और तीनों गुणों की साम्यावस्था नामहीं प्रकृति है और महदादिक तिसके कार्य हैं इनके जानने सेही मोक्ष होती है ऐसा सुनकर जो प्रकृति को और तिसके कार्योंको जानकर संतुष्ट होजाताहै किंतु ध्यान अभ्यासादिकों को नहीं करता है इसीका नाम प्रकृति तुष्टि है तिस तुष्टि वाले की मोक्ष कदापि नहीं होतीहै और किसीने किसीको उपदेश किया जो संन्यास के लेनेसे और त्रिदण्डके धारण करने सेही मोक्ष होती है वह उसके उपदेश से संन्यास त्रिदण्डादिकों को धारण करके तुष्ट होजाता है दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् इस अर्थवाद वाक्यसे जो अपने को कृतकृत्य मानकर तुष्ट होजाता है इसीका नाम उपादान तुष्टिहै इस तुष्टिवाले की भी मोक्ष नहीं होती है क्योंकि वह केवल उपादान याने साधनों काही ग्रहण करताहै आत्मतत्त्व को तो जानताही नहीं है और विनाज्ञान के मोक्ष होती नहीं है इसी वास्ते तिसकी भी मुक्ति नहीं होतीहै ।। और कोई ऐसा जान लेताहै जो कालपाकर मोक्ष आपसे आपही हो

जावै साधन करने से क्या प्रयोजन है उसका नाम कालाख्य तुष्टि है तिसकीभी मोक्ष नहीं होती है और कोई ऐसा निश्चय कर लेताहै भागों में होगी तब मोक्ष होजावैगी ऐसा निश्चय करके जो तुष्टि होजाता है इसका नाम भाग्यतुष्टि है इस तुष्टि वाले की भी मोक्ष नहीं होती है इस रीति से चार प्रकार की तुष्टि का निरूपण करदिया ॥ वाह्या विषयोपरमात् पञ्च ॥ और वाह्य विषयों से उपरम होने से पांच तुष्टि होतीहैं॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन विषयों के संग्रह करने में रक्षा करने में नाश से संग से हिंसा से जो इन विषयों में दोष देखकर इन से उपराम होजाताहै ये पांच उपरम तुष्टि कही जाती हैं ॥ प्रथम तो वृद्धि का निमित्त जो पशुपालन अर्थात् पशुवों की पालना करनी फिर व्यापार करना किसी से प्रतिग्रह लेनी सेवा करनी ये सब विषयों के संग्रह करनेके उपाय हैं प्रथमतो इनके संग्रह करने में दुःख फिर संग्रह करे हुवों की रक्षा करने में दुःख फिर उन के नाशका दुःख और विषयों के भोग करने से इन्द्रियों की तृप्तिभी नहीं होती है किन्तु अधिक इच्छा बढ़ती है इसवास्ते उन के संग से भी दुःखही होता है क्योंकि भोगोंसे अनेक रोगोंकीभी उत्पत्ति होती है और विषय भोग में हिंसाभी होती है क्योंकि भूतों की हिंसा के विना भोग नहीं होता इसवास्ते हिंसारूपी भी दोष विषयभोग से ही होता है ॥ इस रीति से विषयों में दोषदृष्टि करके जो तिनसे उपराम होजानाहै ये पांच उपरम तुष्टि कही जातीहैं आध्यात्मिकचार तुष्टि और पांच वाह्य उपरम तुष्टि सबमिलकर नव तुष्टिहुईं और शास्त्रों में इन्हीं नव तुष्टियों के दूसरे नव नाम लिखेहैं ॥ अम्भः १ सलिल २ मोघ ३ वृष्टिः ४ सुतम ५ पारं ६ सुनेत्र ७ नारीकं ८ अनुत्तमां-

भसिकं ९ इन तुष्टियों के विपरीत याने उलटे करने से अशक्ति के भेद होजातेहैं उन्हींका नाम बुद्धिबध कहा है जैसे अनम्भः १ असलिल २ अमोघ ३ अवृष्टि ४ असुतम ५ अपारं ६ असुनेत्रं ७ अनारीकं ८ अननुत्तमांभसिकं ९ इसरीति से उलटा होनेसे बुद्धिबध कहेजाते हैं ॥ ५० ॥ अब सिद्धि को दिखाते हैं ॥

मूल ॥

ऊहःशब्दोऽध्ययनंदुःखविघातास्त्रयःसुहृत्प्राप्तिः ॥
दानंचसिद्धयोऽष्टौसिद्धेःपूर्वोऽङ्कुशास्त्रिधा ॥ ५१ ॥

अन्वय पदार्थ

ऊहः = तर्क या विचार ॥
शब्दः = शब्द
अध्ययनं = अध्ययन
दुःखविघाताः = त्रिविध दुःखनाश
सुहृत्प्राप्तिः = सुहृत्प्राप्ति
दानंच = चपुनः दान
अष्टौ = आठ
सिद्धयः = सिद्धी हैं
सिद्धेः = सिद्धि के
पूर्वः = पूर्व
अंकुशः = अंकुश
त्रिधा = तीनहैं

भावार्थ

ऊहः नाम विचारकाहै जैसे कोई पुरुष नित्यहीं विचारकर कर-

ताहै ॥ क्या ये लोक सत्य है या परलोक स्वर्गादिक सत्यहैं और मोक्ष क्या पदार्थ है और किस प्रकार हम मोक्ष होवेंगे इसप्रकार का जोसदैवही चिंतन करताहै उसको ज्ञान उत्पन्न होताहै प्रधान से पृथक् पुरुषहै और पुरुष से भिन्न बुद्धिहै और अहंकार तन्मात्रादिक भी भिन्नहैं और एकादश इन्द्रिय तथा पंचमहाभूत भी अन्यहैं याने पृथक् हैं इसप्रकारका पचीसतत्त्वों का ज्ञान उत्पन्नहोताहै उसी ज्ञानसे वह मोक्षको प्राप्त होताहै इसीका नाम ऊहःप्रथमासिद्धी है और शब्दज्ञान से प्रधान पुरुष बुद्धि अहंकार तन्मात्र एकादश इन्द्रिय पंचमहाभूतों का भी भेदज्ञान होता है तिसी से फिर मोक्ष होती है ये शब्दनामक तीसरी सिद्धी है और वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से भी पचीस तत्त्वों के ज्ञानको प्राप्तहोकरके भी मोक्ष को प्राप्त होजाताहै ये तीसरी अध्ययन नामकसिद्धि है आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैवक ये तीन प्रकार का दुःखहै इसका विघात भी तीनप्रकारका है तिसदुःखत्रयके वास्ते जो गुरु के समीप जाकर उपदेश को प्राप्तहोकर मोक्षको प्राप्तहोजाता है ये दुःखत्रयविघात नामक चतुर्थी सिद्धि है ये चतुर्थ सिद्धि दुःखत्रय के भेद से तीन प्रकारकी है तीन पूर्ववाली और तीन ये सब मिल कर छैसिद्धीहुई और जो किसी सुहृदसे ज्ञानको प्राप्तहोकर मोक्षको प्राप्तहोजाताहै ये सुहृद नाम सप्तमी सिद्धिहै और जो विरक्त संन्यासियों की अन्न औषधी कमंडू आदिकोंको दान देकर सेवाकरके उनसे ज्ञानको प्राप्तहोकर मोक्षको प्राप्त होजाताहै इसीका नाम दान करके अष्टमी सिद्धी है और शास्त्रोंमें इन्हीं आठ सिद्धीको दूसरे नामोंसे भी लिखाहै ॥ तारं १ सुतारं २ तारतारं ३ प्रमोद ४ प्रमुदित ५ प्रमोदमान ६ रम्यक ७ सदाप्रमुदित ८ इन्हीं के विपर्यय

का नाम बुद्धिवध है ॥ अतार १ असुतार २ अतारतार ३ अ-प्रमोद ४ अप्रमुदित ५ अप्रमोदमान ६ अरम्यक ७ असदाप्रमु-दित ८ येही आठ अशक्तिकेही अंतर्भूत किये हैं अशक्तिके अ-ट्ठाईस भेद पूर्व कहेहैं एकादशेन्द्रियबध और नवतुष्टि के विपर्यय और आठ सिद्धिके विपर्यय जो अभी कहेहैं ये सत्तरहबुद्धि के बध सब मिलकर अट्ठाईस हुवे येही अशक्ति के भेद कहे जाते हैं ॥ और सिद्धिके पूर्व तीन अंकुश रहतेहैं जो विपर्यय अशक्ति तुष्टि ये तीनहीं सिद्धिके अंकुश हैं जैसे हाथी जो है सो अंकुश जिस हस्तिवान ने पकड़ा है उसके वशमें होजाता है तैसेही विपर्यय अशक्ति तुष्टिरूपी अंकुशों करके गृहीत पुरुष भी अज्ञान के व-श्यमें प्राप्त होता है इसवास्ते इन विपर्ययादिक अंकुशोंका त्याग करके सिद्धियों काही ग्रहण करे क्योंकि सिद्धियोंके सेवन करने से तत्त्वज्ञान उत्पन्न होताहै तिसी ज्ञान करके पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है और जो पूर्व कहाथा भावों करके अधिवासित हुवाहुवा लिंगशरीर गमनागमन करता है सो भाव धर्मादिक आठ कहे हैं सो भी बुद्धिकेही परिणामहैं ॥ और विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि-रूप करके परिणत हुवेहुवे वही भाव बुद्धिकासर्ग भी हैं इसी का नाम प्रत्ययसर्ग है और तन्मात्रासर्ग महाभूतोंपर्यंत कहा सो दोनों मेंसे एक करकेही पुरुषार्थ याने मोक्षकी सिद्धी होतीहै या दोनों सर्गों करके मोक्षकी सिद्धी होती है इस शंकाका उत्तर आगे की कारिका में करते हैं ॥५१॥

मूल ॥

नविनाभावैर्लिंगंनविनालिंगेनभावनिर्वृत्तिः ॥
लिंगाख्योभावाख्यस्तस्माद्द्विविधःप्रवर्ततेसर्गः ५२

अन्वय	पदार्थ
विनाभावैः	= प्रत्ययसर्गसे विना
नलिंगं	= तन्मात्राकी सिद्धि नहीं होती है
लिंगेन	= लिंगके
विना	= विना
भावनिर्वृत्तिः	= प्रत्ययसर्गकी
न	= सिद्धि नहीं होतीहै
लिंगाख्यो	= लिंगसंज्ञक और
भावाख्यः	= भावसंज्ञक
तस्मात्	= तिसकारण से
द्विविधः	= दोप्रकार का
सर्गः	= सर्ग
प्रवर्तते	= प्रवृत्त होता है

भावार्थ

भावैः प्रत्ययसर्गैर्विना लिंगं न ॥ भावनाम धर्मादिक बुद्धि के सर्गकाहै सो बुद्धिके सर्ग के विना तन्मात्रा याने लिंग शरीरकी स्थिति नहीं होती है क्योंकि पूर्व पूर्व संस्कार और अदृष्टों के वश्यसे ही उत्तर उत्तर शरीर की प्राप्ति होती है और तन्मात्र सर्ग से विना भावों की सिद्धि नहीं होती है क्योंकि धर्मादिकों की स्थूल सूक्ष्म शरीर करके ही सिद्धि होतीहै बीजांकुर न्याय करके अन्योन्याश्रयदोष भी नहीं आताहै क्योंकि दोनों अनादि हैं और तत्तत्व्यक्तियोंको तत्तत्जाती की अपेक्षा है भी परंतु तत्तत् व्यक्तियों को परस्पर की अपेक्षा नहीं है अर्थात् हर एक व्यक्तिको अपनी अपनी जाती की अपेक्षा भी है परंतु दूसरी व्यक्ति की अपेक्षा

नहीं है क्योंकि अनादि हैं सब व्यक्तियें इसवास्ते भावाख्य और लिंगाख्य दोप्रकार का सर्गही प्रवृत्त होताहै ॥ ५२ ॥

मूल-अष्टविकल्पंदैवंतैर्यग्योनंपंचधाभवति ॥
मानुष्यंत्वेकविधंसमासतोऽयंत्रिधासर्गः५३॥

अन्वय पदार्थ

अष्टविकल्पं = आठ प्रकारका
दैवं = दैवसर्ग
तैर्यग्योनं = तिर्यग्योनिकसर्ग
पंचधा = पांचप्रकारका
भवति = होताहै
मानुष्यं = मनुष्यसर्ग
त्वेकविधं = पुनःएकप्रकारकाहै
समासतो = संक्षेप से
अयं = यह
त्रिधा = तीनप्रकारका
सर्गः = सर्ग याने सृष्टि है

भावार्थ

पूर्वकारिका में प्रत्ययसर्ग याने बुद्धिके सर्ग का निरूपण कियागया है ॥ अब इसकारिका में भूतों के सर्ग का निरूपण करते हैं ॥ अष्टविकल्पंदैवं ॥ दैवसर्ग अर्थात् देवतों का सर्ग आठ प्रकार का है ॥ ब्राह्म १ प्राजापत्य २ सौम्य ३ ऐन्द्र ४ गान्धर्व ५ यक्ष ६ राक्षस ७ पैशाच ८ ॥ ये आठ प्रकारकी देवतों की सृष्टि है और पशु मृग पक्षि सरीसृप स्थावर ये पांचप्रकार की भूतों क

तिर्यग् सृष्टि है और मनुष्ययोनि एकही प्रकारकी है ये चौदह प्रकारकी सृष्टि कही है सो तीनों लोकों में तीनों गुणों करके चौदह प्रकार की सृष्टि व्याप्तहै ॥ ५३ ॥ यदि च तीनों लोकों में तीनोंगुण व्याप्त होकर रहते हैं तथापि किस लोक में कौन गुण अधिक रहता है अब इसवार्त्ता को दिखाते हैं ॥

मूल ॥

ऊर्ध्वंसत्वविशालस्तमोविशालश्चमूलतःसर्गः ॥
मध्येरजोविशालोब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तम् ॥ ५४ ॥

अन्वय	पदार्थ
ऊर्ध्वं	ऊपरके लोकोंमें
सत्व	सत्वगुण
विशालः	उत्कट है
तमो	तमोगुण
च	चपुनः
विशालः	उत्कट है
मूलतः	पशुआदिकों में
मध्ये	मध्यमें
सर्गः	जो सृष्टिहै
रजो	रजोगुण
विशालो	उत्कट है
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तम्	ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यंत सब तीनों गुणोंकरकेही व्याप्त हैं

भावार्थ

ऊर्ध्वंसत्वविशालः ॥ ऊपरके आठ ब्रह्मादि देवलोकोंमें सत्वगुणही विशाल है अर्थात् सत्वगुणकाही विस्तार है सत्व उत्कट है और रज तम दोनों न्यून हैं सूक्ष्म याने उदासीनहै ॥ तमो विशालो मूलतःसर्गः॥पशुआदि स्थावरान्त योनियोंमें संपूर्ण सर्ग तमोगुण करकेही व्याप्त है अर्थात् पशुआदि योनियोंमें तमोगुण उत्कट रहता है और सत्व रज दोनों अनुत्कट रहते हैं और मध्यमें याने मनुष्यलोकमें रजोगुणही उत्कट है और सत्व तम दोनों अनुत्कट रहते हैं इसीवास्ते मनुष्योंमें दुःख अधिक रहता है इसरीतिसे ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यंत सब में तीनोंगुण न्यून अधिक भावकरके बराबर वर्तते हैं ॥ एक तो लिंगसर्ग है दूसरा भावसर्ग है और चतुर्दश प्रकारका भूतसर्ग ये सब मिलकर षोडश प्रकारका सर्ग है सो सब प्रधानकृतही है ॥ ५४ ॥

मूल ॥

तत्रजरामरणकृतंदुःखंप्राप्नोतिचेतनःपुरुषः ॥
लिंगस्याविनिवृत्तेस्तस्माद्दुःखंस्वभावेन ॥ ५५ ॥

अन्वय	पदार्थ
तत्र	देवतादि योनियों में
पुरुषः	पुरुष जो आत्मा है
चेतनः	चेतन है
जरामरणकृतं	जरामरणकृत
दुःखं	दुःखको
प्राप्नोति	प्राप्त होताहै

लिंगस्य = लिंगशरीरकी
अविनिवृत्तेः = निवृत्ति न होनेतक
तस्मात् = तिसकारणसे
स्वभावेन = स्वभावकरकेही
दुःखं = दुःख होताहै

भावार्थ

तत्रेति ॥ तिन देवता आदिक योनियोंमें जरामरणकृत दुःख को चेतन पुरुषही प्राप्तहोताहै और प्रधान बुद्धि अहंकार तन्मात्रा आदिक जरामरणकृत दुःख को नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ प्र० ॥ देवतादिक योनियों में कितने काल तक पुरुष दुःखको प्राप्तहोताहै ॥उ०॥ लिंगस्याविनिवृत्तेः ॥ यावत्पर्यंत लिंग शरीर की निवृत्ति नहीं होती तावत्पर्यंत दुःखको प्राप्तहोताहै ॥ प्र० ॥ दुःखादिक सब बुद्धिके धर्म हैं चेतन पुरुष के तो धर्म हैं नहीं तब पुरुष में दुःखादिक कैसे होते हैं ॥ उ० ॥ पुरिलिंगेशेतेइतिपुरुषः ॥ लिंग शरीररूपी पुरी में जो शयनकरै व्याप्तहोकरके रहै उसका नाम पुरुषहै सो पुरुष का लिंगशरीर के साथ सम्बन्ध होने से लिंगशरीर के धर्म जो दुःखादिक हैं वह पुरुष में भी प्रतीत होने लगते हैं सम्बन्धके छूटने पर फिर वह नहीं रहते हैं जिस वास्ते सब आत्मों का अपने अपने लिंग शरीर के साथ अनादि सम्बन्ध चलाआता है इसी वास्ते सब जीवात्मा को जरा मरणादिक दुःख भी होतेहैं सम्बंध के नाशहोने पर दुःख का भी नाश होजाताहै इसी वास्ते कहाहै लिंगस्याविनिवृत्तेः ॥ महत्तत्त्व अहंकार पञ्च तन्मात्रादिकों का बना हुआ जो लिंगशरीर है तिसमें यावत्पर्य्यंत पुरुष का प्रवेश है तावत्पर्यंत संसार पुरुषको बनाहै अर्थात् तीनों लोकों में तावत्

पर्यंत पुरुषको जन्म मरणादि संसार होताही है जब लिंगशरीर का नाश होजाता है तब पुरुष मोक्ष को प्राप्तहोता फिर जरा मरणादिक दुःख भी नहीं होते हैं ॥ सो मोक्ष पचीस तत्त्वों के ज्ञान करके होती है और तिसी ज्ञानकरके लिंग शरीर का भी नाश होजाताहै ॥ ये प्रधान है ये बुद्धिहै ये अहंकार है ये पंचतन्मात्राहै ये एकादश इन्द्रिय हैं ये पांच महाभूत हैं इनसे विलक्षण पुरुष है इस प्रकार के तत्त्वों के ज्ञानसे लिंगशरीर का नाशहोताहै फिर पुरुषकी मुक्ति होतीहै ॥५५॥ आरम्भकी प्रवृत्ति का निमित्त क्याहै॥

मूल ॥

इत्येषप्रकृतिकृतोमहदादिविशेषभूतपर्यन्तः ॥
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थंस्वार्थइवपरार्थआरम्भः ॥ ५६॥

अन्वय	पदार्थ
इत्येष	= इति अव्यय समाप्ति और निर्देश अर्थ में होता है ॥
महदादिविशेषभूतपर्यंतः	= महत्तत्त्वसे लेकर महाभूतों तक
प्रकृतिकृतः	= ये सब प्रकृतिकाही कियाहुआ
आरम्भः	= आरम्भ है
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं	= हरएक पुरुषकी मुक्तिके वास्ते
स्वार्थइवपरार्थः	= स्वार्थकी तरह परार्थ है ॥

भावार्थ

इतिएष ॥ इति ये जो अव्यय है सो समाप्ति अर्थ में भी होता है और निर्देश याने उपदेश या दिखाने अर्थ में भी आता है

सो दिखाते हैं महदादिविशेषभूतपर्यंतः प्रकृतिकृतो आरम्भः ॥ महत्तत्त्वसे लेकर महाभूतोंपर्यंत जितना आरम्भ है सो सब प्रकृतिकाही कियाहुआ है॥ प्रथम प्रकृतिसे महत्तत्त्व हुआ फिर महत्तत्त्वसे अहंकार तिससे तन्मात्रा और एकादश इन्द्रिय फिर तन्मात्रा से पांच महाभूतहुये हैं इसरीतिसे प्रकृतिनेही आरम्भ याने जगत्का प्रारम्भ कियाहै न तो ईश्वरने किया और न किसी पुरुष ने किया है ॥ प्रतिपुरुषविमोक्षार्थ ॥ देव मनुष्य तिर्यगादि योनियेंमें प्राप्तहुये जो पुरुष हैं तिनकी मुक्तिके लिये प्रकृतिका प्रारम्भ है जैसे ओदन जो भात तिसकी कामनावाला पुरुष ओदनके पाककरने में प्रवृत्त होताहै जब ओदनका पाक होजाताहै तब तिससे निवृत्त होजाता है याने हटजाता है तैसेही हरएक पुरुषकी मुक्तिके लिये प्रकृतिकी प्रवृत्ति होतीहै जिस पुरुषकी मुक्ति होजाती है तिस पुरुष के प्रति फिर प्रकृतिकी प्रवृत्ति नहीं होती है किंतु तिससे हटजाती है बाकीके पुरुषों के प्रति तिसकी प्रवृत्ति बराबर रहती है ॥ प्र० ॥ किस प्रकार प्रकृतिका आरम्भ होता है ॥ उ० ॥ स्वार्थइवपरार्थमारम्भः ॥ स्वार्थकी तरह परार्थ आरम्भ होताहै ॥ जैसे कोई पुरुष अपने कार्यको त्यागकरके मित्रके कार्यको करता है इसीप्रकार प्रधानभी अपने अर्थको त्यागकरके पुरुषके भोग मोक्षके लिये प्रवृत्त होती है और पुरुष प्रधानपर कोई भी उपकार नहीं करता है और प्रधान स्वार्थ की तरह करती है स्वार्थ याने अपने वास्ते कुछ भी नहीं करती शब्दादिक विषयों का ज्ञान और गुणोंसे पुरुष का भेद ज्ञान भी पुरुषके लियेही करती है तीनों लोकों में प्रधानहीं प्रथम शब्दादिक विषयों में पुरुष की योजना को करती है फिर अंतमें मोक्ष में जोड़ देती है और पुरुष अकर्ता है किंतु कुछ भी नहीं क-

रता परंतु भोक्ताहै ॥ ५६ ॥ प्र० ॥ प्रधान तो अचेतन याने जड़है और पुरुष चेतन है तब फिर कैसे जड़ प्रधान तीनों लोकों में पुरुषको विषयोंके साथ जोड़ देती है अंतमें मोक्षमें जड़में तो प्रवृत्ति बनतीही नहीं ॥ उ० ॥ आप सत्य कहते हैं परंतु अचेतनों में भी प्रवृत्ति निवृत्ति देखी है सो दिखाते हैं ॥

मूल ॥

**वत्सविवृद्धिनिमित्तंक्षीरस्ययथाप्रवृत्तिरज्ञस्य ॥
पुरुषविमोक्षनिमित्तंयथाप्रवृत्तिःप्रधानस्य ॥ ५७ ॥**

अन्वय	पदार्थ
अज्ञस्य	अज्ञ याने जड़
क्षीरस्य	दुग्धकी
वत्सविवृद्धिनिमित्तं	बछराकी वृद्धिके निमित्त
यथाभवति	जैसे होती है
तथा	तैसेही
प्रधानस्य	प्रधानकी भी
पुरुषस्य	पुरुषकी
विमोक्षनिमित्तं	मुक्तिके लिये होतीहैं

भावार्थ

जैसे गौ करके भक्षणकियेहुये तृणादिक दुग्धभावको प्राप्त होकर वत्सकी वृद्धिको याने पुष्टिको करता हैं जब बछरा पुष्ट होजाता है तब दुग्ध भी निवृत्त होजाताहै याने सूख जाता है इसी प्रकार जड़ प्रधान की प्रवृत्ति भी पुरुष की मोक्षके लिये होती है जब पुरुष मुक्त होजाता है तब प्रधान भी पुरुष से हटजाती है ॥ ५७ ॥

मूल ॥

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थंयथाक्रियासुप्रवर्ततेलोकः ॥
पुरुषस्यविमोक्षार्थंप्रवर्ततेतद्वदव्यक्तम् ॥ ५८ ॥

अन्वय पदार्थ

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं = इच्छाकी निवृत्तिकेवास्ते
यथालोकः = जैसेलोक
क्रियासु = क्रियामें
प्रवर्तते = प्रवृत्तहोते हैं
पुरुषस्य = पुरुषकी
विमोक्षार्थं = मुक्तिकेलिये
तद्वद् = तैसे
अव्यक्तं = प्रधानभी
प्रवर्तते = प्रवृत्त होती है

भावार्थ

जैसे लोकमें इष्ट वस्तुकी इच्छाकी निवृत्तिके वास्ते पुरुष क्रिया में प्रवृत्त होताहै अर्थात् जब किसी पुरुष को इष्टवस्तु के प्राप्त करने की इच्छा होती है तब उसवस्तुकी प्राप्ति के वास्ते गमनागमन-रूपक्रिया में प्रवृत्तहोताहै वस्तु की प्राप्ति होने पर तिसकी इच्छा भी निवृत्त होजाती है ॥ तैसेही पुरुष की मुक्ति के लिये प्रधान भी प्रवृत्त होती है और पुरुष को शब्दादि विषयों का उपभोग कराने के वास्ते और गुणों से पुरुष को भेद ज्ञान कराने के वास्ते अर्थात् दो प्रकार के पुरुषार्थ को कराकर प्रधान भी निवृत्त हो जाती है ॥ ५८ ॥

मूल ॥

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् ॥
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य निवर्तते प्रकृतिः॥५६॥

अन्वय पदार्थ

यथानर्तकी = जैसे वेश्या
रंगस्य = सभाको नाच
दर्शयित्वा = दिखाकरके
नृत्यात् = नाचनेसे
निवर्त्तते = निवृत्त होजातीहै
तथाप्रकृतिः = तैसे प्रकृति भी
पुरुषस्य = पुरुषको
आत्मानं = अपने को
प्रकाश्य = दिखाकर
निवर्त्तते = निवृत्त होजातीहै

भावार्थ

जैसे नर्तकी जो वेश्याहै सो शृंगारादि रसों करके इतिहासादि भावों करके तथा गीत और बाजों के सहित अपनी नृत्यकारीको सभाके प्रति दिखाकरके अपने कार्यको करके पश्चात् नृत्यकारीसे हटजाती है तैसे प्रकृतिभी पुरुषात्मा को अपनी नृत्यको दिखाकर अर्थात् बुद्धि अहंकार तन्मात्र इन्द्रिय महाभूत इन भेदों करके अपने को दिखाकर फिर पुरुषसे निवृत्त होजाती है ॥ ५६ ॥
कौन इसप्रधान के निवृत्त करने का हेतुहै सो दिखाते हैं ॥

मूल ॥

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणःपुंसः ॥
गुणवत्यगुणस्यसतस्तस्यार्थमपार्थकंचरति॥६०॥

अन्वय	पदार्थ
नानाविधैः	नानाप्रकार के
उपायैः	उपायों करके
उपकारिणि	उपकार करनेवाली
गुणवति	गुणोंवाली
अनुपकारिणः	अनुपकारी
पुंसः	पुरुषको
अगुणस्य	गुणरहितस्य
सतः	नित्यके
तस्यार्थं	तिसके लिये
अपार्थकं	व्यर्थही
चरति	प्रवृत्त होती है

भावार्थ

गुणवति ॥ गुणोंवाली और उपकार करने वाली प्रकृति जो है सो नानाप्रकार के उपायों करके अनुपकारि पुरुष के लिये चेष्टा करती है अर्थात् देव मनुष्य तिर्यगादियोनियों के सम्बन्धों को कराके और सुख दुःख मोहभाव को पुरुषको प्राप्तकरके तथा शब्दादिक विषयों को प्राप्तकरके नाना प्रकार के उपायों करके अपने को प्रकाश्य करके पश्चात् पुरुष को ऐसा ज्ञान कराती है मैं अन्यहूं तुम अन्यहो फिर पुरुषसे हट जाती है नित्य जो

पुरुष तिसके वास्ते व्यर्थही प्रकृति चेष्टा करती है ॥ जैसे कोई परोपकारी सब पर उपकार करताहै परंतु अपने प्रत्युपकारकी याने बदले की इच्छा नहीं करताहै एवं प्रकृति भी पुरुष के लिये उपकार को करती है पश्चात् आत्मा को अपने स्वरूप का प्रकाश करके निवृत्त होजाती है ॥ ६० ॥

मूल ॥

प्रकृतेःसुकुमारतरंनकिंचिदस्तीतिमेमतिर्भवति ॥
यादृष्टास्मीतिपुनर्नदर्शनमुपैतिपुरुषस्य ॥ ६१ ॥

अन्वय पदार्थ

प्रकृतेः = प्रकृति से
सुकुमारतरं = सुकुमार
न किंचिदस्ति = कोई भी नहीं है
इतिमे = इसप्रकार की मेरी
मतिर्भवति = बुद्धि होती है
या दृष्टास्मि = जो पुरुष करके मैं देखी गई हूं
इति पुनः = फिर इसप्रकार
न दर्शनं = दर्शन को नहीं
उपैति = प्राप्त होती है
पुरुषस्य = पुरुषके

भावार्थ

लोकमें प्रकृति से बढ़कर कोई सुकुमार नहीं ऐसी हमारी बुद्धि होती है क्योंकि जिस करके प्रकृति को पुरुषके ऊपर उपकार करने की मति उत्पन्न हुई है इसवास्ते प्रकृति कहती है मैं इस पुरुष क-

रके देखीगईहूं फिर उस पुरुषकी दृष्टी का गोचर प्रकृति नहीं होती है किंतु जिस पुरुषको विवेक ज्ञान होजाताहै उससे फिर हटजाती है ॥ अब प्रकृति की सुकुमारता को दिखाते हैं ॥ ईश्वरवादी ई-श्वरकोही कारण मानते हैं ॥ वह कहते हैं अज जो जीवात्माहै सो तो असमर्थ है किंतु ईश्वर करके प्रेरित हुआ हुआ स्वर्ग को या नरकको गमन करताहै और सुख दुःख मोहादिकों को भी प्राप्त होताहै इस वास्ते जीव के भोग मोक्षके देने में ईश्वरही कारण है ॥ और स्वभाववादी कहता है स्वभावही सब में कारण है हंसों को किसने श्वेत रंगका बनायाहै और मयूर को किसने चित्ररंग का बनायाहै किंतु स्वभावने ही बनाया है इस वास्ते स्वभावही कारण है अब सांख्यशास्त्रके आचार्य्य कहते हैं ॥ निर्गुण होने से ईश्वर को सगुण प्रजाको वह कैसे उत्पन्न करसक्ता है और नि-र्गुणसे सगुणकी उत्पत्तिभी नहीं होसक्तीहै और पुरुष जीवात्माभी निर्गुण है तिससे भी प्रजा किसी प्रकारसे भी उत्पन्न नहीं होसक्ती है इसवास्ते सगुण प्रकृति से सगुण प्रजाकी उत्पत्ति बन सक्ती हैं जैसे शुक्लवर्ण वाले तंतुवों से शुक्लही वर्णवाला पट उत्पन्न होताहै और कृष्ण तंतुवों से कृष्णही वर्ण वाला पट उत्पन्न होताहै इसी प्रकार त्रिगुणात्मक प्रधान से त्रिगुणात्मक तीनोंलोकभी उत्पन्न होते हैं ये वार्ता अनुभवमें भी आतीहै और निर्गुण ईश्वरसे सगुण लोकोंकी उत्पत्ति नहीं बनती क्योंकि अयुक्त है ऐसा अनुभवमें आताहै इसीतरह निर्गुणपुरुषसेभी सगुण जगत् की उत्पत्ति नहीं बनती ॥ और कोई काल कोही कारण मानते हैं कालवादी सो दिखातेहैं ॥ कालः पञ्चास्ति भूतानि कालः संहरते जगत् ॥ कालः सुप्तेषुजागर्ति कालोहिदुरतिक्रमः १ काल में हीं पांचभूत रहते हैं

कालही जगत् को उत्पन्न करताहै और फिर अपने में संहार भी करलेताहै कालही पुरुषों के सोने पर जागता रहता है काल बड़ा दुरतिक्रम्य है किसीकरके उल्लंघन नहीं कियाजाता इस वास्ते कालही कारण है ॥ कालवादीका मतभी ठीक नहीं है क्योंकि कालनाम है क्षण पल दिन मासादि क्रिया का सो क्रिया सूर्य के आश्रितहै सूर्यकी उत्पत्ति नाशसे काल भी उत्पत्ति नाश वालाहै इस वास्ते काल कारण नहीं होसक्ता और व्यक्त अव्यक्त तथा पुरुष ये तीनही पदार्थहैं और कालभी तिनके अंतर्भूतहै सहित व्यक्तके सर्वका कारण अव्यक्त है इस वास्ते प्रधानही सब जड़ जगत् का कारणहै और स्वभाव भी तिसी जगत्के अंतर्भूत है इस वास्ते स्वभाव भी कारण नहीं होसक्ता है इस जगत् का प्रकृतिही कारण है प्रकृतिका कोई दूसरा कारण नहीं है और पुरुषकेलिये कृतार्थ करके फिर पुरुषकी दृष्टि का गोचर नहीं होतीहै इस प्रकृति से सुकुमार और कोईभी नहीं है इसवास्ते ईश्वरादि जगत् का कारण नहीं है ऐसी हमारी बुद्धि होती है ॥ ६१ ॥

मूल ॥

तस्मान्नबध्यतेनाऽपिमुच्यतेनापिसंसरतिकश्चित् ।
संसरतिबध्यतेमुच्यतेचनानाश्रयाप्रकृतिः ॥ ६२ ॥

अन्वय	पदार्थ
तस्मात्	= तिसकारण से
नबध्यते	= नतो बँधता है
नापिमुच्यते	= न मुक्तहोता है
नापिसंसरति	= संसारीभी नहींहोता

कश्चित् = कोई भी पुरुष
बध्यते = बंधायमान होतीहै
मुच्यते च = चपुनः मुक्त भी होती है
नानाश्रयाप्रकृतिः = नाना योनियोंको आश्रयण करके प्रकृति

भावार्थ

जिस कारण से पुरुष न बन्धायमान होता है न मुक्त होता है और न जन्म मरणरूपी संसार को प्राप्त होता है तिसी कारण से प्रकृतिही नाना आश्रय जो देव मनुष्य तिर्यगादियोनियों में प्राप्त होकर अर्थात् देव मनुष्य तिर्यगादियोनियों के आश्रयभूत जो बुद्धि अहङ्कार तन्मात्रा इन्द्रियभूत इन रूपोंको प्राप्त होकर प्रकृति ही बन्धायमान होती है मुक्त होती है जन्म मरणरूपी संसार को भी प्राप्त होती है॥ प्र०॥ जबकि पुरुष स्वभावसेही मुक्तहै और सर्व गत भी है तब फिर अप्राप्त की प्राप्तिके वास्ते पुरुष संसारको क्यों प्राप्त होताहै जिस वास्ते होता है इसी वास्ते बध्य भी होताहै और मुक्त भी होता है॥ उ०॥ जिस कारणसे पुरुषको बास्तव संसार नहीं है इसीवास्ते प्रकृति पुरुषके भेदज्ञानसेही पुरुषको अपने स्व-रूप का ज्ञान होता है तिस करके पुरुष केवल शुद्ध मुक्तस्वरूप अपने स्वरूप में स्थित होता है जिस वास्ते पुरुषको बास्तव बन्ध नहीं है इसवास्ते बास्तव मोक्ष भी नहीं है उपाधी के सम्बन्धसे पुरुष में बन्धकी प्रतीति होती है उपाधी के नाश होनेपर न बन्ध है न मोक्षहै॥ और प्रकृति जो है सोई अपनेको बन्धायमान भी करती है और छुड़ाती भी है जहांपर सूक्ष्म शरीर त्रिविधकरणोंकरके युक्त है तहांपर तीन प्रकारकी बन्ध करके प्रकृतिही बन्धायमान होती

है सो तीनप्रकार की बन्ध ये हैं प्राकृतबन्ध वैकृतबन्ध दाक्षिणक-बन्ध पूर्वकहा भी है इसको और सूक्ष्म शरीर धर्माऽधर्म करकेही युक्त होताहै ज्ञान करके तिस बन्धकी निवृत्ति होती है ॥ ६२ ॥ प्र० ॥ प्रकृतिही बन्धायमान होती है फिर मुक्त होती है संसार को प्राप्त होती है सो किस करके होती है ॥

मूल ॥

रूपैःसप्तभिरेव बध्नात्यात्मानमात्मनाप्रकृतिः ॥
सैवचपुरुषार्थं प्रतिविमोचयत्येकरूपेण ॥ ६३ ॥

अन्वय	पदार्थ	अन्वय	पदार्थ
प्रकृतिः	= प्रधान जो है	सैव	= सोई प्रकृति
आत्मना	= अपने करके	च	= चपुनः
आत्मानं	= अपने को	पुरुषार्थं	= पुरुष के अर्थ को
सप्तभिः	= सात	एकरूपेण	= एकरूप करके
एव	= निश्चय करके	प्रतिविमोचयति	= मुक्त करदेती है
रूपैः	= रूपों करके		
बध्नाति	= बाँध लेती है		

भावार्थ

धर्म वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य ये सात प्रकृति के रूपहैं इन्हींकरके ही प्रकृति अपने को आप बाँध लेती है ॥ सैव च ॥ चपुनः सोई प्रकृति एक रूप करके याने ज्ञानकरके पुरुषको मुक्त भी करदेती है ॥ ६३ ॥ प्र० ॥ किस प्रकार वह ज्ञान उत्पन्न होताहै ॥ उ० ॥

मूल ॥

एवंतत्त्वाभ्यासान्नास्तिनमेनाहमित्यपरिशेषम् ॥
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यतेज्ञानम् ॥ ६४ ॥

अन्वय पदार्थ

एवं = पूर्वोक्तरीति से
तत्त्वाभ्यासात् = तत्त्वोंके अभ्याससे
नास्ति = नहीं हैं मेरेतत्त्वरूप
नाहं = और न मैं तत्त्वरूप
एवं = इसप्रकार का
भवामि = होसक्ताहूं
न मे = न मेरा यह शरीरहै
अपरिशेषं = अहंकार से रहित
अविपर्ययात् = संशयसे रहित
विशुद्धं = शुद्धस्वरूप
केवलं = केवल मोक्षका कारण
ज्ञानं = आत्मज्ञान
उत्पद्यते = उत्पन्न होताहै

भावार्थ

पूर्वोक्त क्रम करके पञ्चविंशति तत्त्वों के अभ्यास से ज्ञान उत्पन्न होताहै ये तो प्रकृति है ये पुरुष प्रकृति से भिन्न है ये पञ्च तन्मात्रा हैं एकादश इन्द्रियहैं पांच महाभूत हैं इस प्रकार का तत्त्वों का भेद ज्ञान पुरुष को जब उत्पन्न होताहै तब पुरुष ऐसा जानताहै न तो मेरे यहतत्त्वहै और न मैं तत्त्वरूपहूं और न मेरा

यह शरीरहै इस वास्ते मैं इन तत्त्वों से भिन्नहूं और मेरेसे ये प्रकृति आदि तत्त्व भिन्नहै मेरा इनके साथ कोई भी सम्बन्ध नहींहै इस प्रकार अभिमान से रहित संशय से रहित मैं शुद्धस्वरूपहूं केवलहूं ऐसा जो ज्ञानहै वही मोक्षका कारणहै इसी ज्ञान करके पुरुष मोक्ष को प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ प्र० ॥ ज्ञानकी प्राप्ति होने पर फिर पुरुष क्या करता है ॥ उ० ॥

मूल ॥

तेननिवृत्तप्रसवामर्थवशात्सप्तरूपविनिवृत्ताम् ॥
प्रकृतिंपश्यतिपुरुषःप्रेक्षकवदवस्थितःसुस्थः॥६५॥

अन्वय पदार्थ

तेन = ज्ञानेन
पुरुषः = पुरुष जो है
प्रकृतिं = प्रकृतिको
पश्यति = देखताहै
प्रेक्षकवत् = परीक्षक के तुल्य
अवस्थितः = स्थितहोकर
कथंभूतां = कैसीप्रकृतिको
निवृत्तप्रसवां = दूरहोगयाहै उत्पन्नकरना जिसमें
सप्तरूपविनिवृत्तां = निवृत्तहोगयेहैं सातरूप जिसके
अर्थवशात् = अर्थके वश्य से

भावार्थ

पुरुष जब आत्मज्ञान को प्राप्त होजाताहै तब तिस शुद्धज्ञान

करके पुरुष प्रकृति को देखताहै ॥ प्रेक्षक की तरह अर्थात् जैसे परीक्षा करने वाला उदासीन होकर देखताहै तैसे पुरुष भी स्वस्थ स्थित होकर प्रकृति को देखता है जैसे सभाका परीक्षक स्वस्थ अपने स्थानपर बैठा हुवा सभा को और नर्तकी को देखताहै तैसे पुरुष भी नर्तकीरूप प्रकृति को देखताहै कैसी प्रकृति को देखताहै निवृत्तहोगयाहै बुद्धी अहंकारादि कार्य जिसमें और फिर निवृत्त होगयाहै सप्त जो धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य की उत्पत्ति करनी जिसप्रकृति में अर्थात् बन्धनका हेतु जो सात धर्मादिक तिनसे रहित प्रकृति को पुरुष देखताहै ॥ ६५ ॥

मूल ॥

दृष्टामयेत्युपेक्षकएकोदृष्टाहमित्युपरमत्यन्या ॥
सतिसंयोगेऽपितयोः प्रयोजनंनास्तिसर्गस्य ॥६६॥

अन्वय पदार्थ

मया = मैंने याने पुरुषने
दृष्टा = देखली है
इति = इसप्रकार
उपेक्षकः = साक्षी पुरुष
एको = एक है
अहं = मैं प्रकृति
इति = इसप्रकार
दृष्टा = देखीगईहूं पुरुष करके
उपरमत्यन्या = प्रकृति उपराम होजातीहै
अपि = निश्चय करके

सतिसंयोगे = फिरसंयोगकेहोनेपरभी
तयोः = तिन प्रकृतिपुरुषका
सर्गस्य = सृष्टिकरनेका
प्रयोजनं = प्रयोजन
नास्ति = नहीं रहताहै

भावार्थ

जैसे कोई उपेक्षक याने साक्षीपुरुष सभा को देखकरके कहताहै मैंने तो इससभा को और नर्तकी वेश्याको देखलियाहै और इस के गुणोंकोभी जानलियाहै ऐसे कहकरके पश्चात् वह उपराम हो जाताहै तैसे आत्मा जो शुद्ध केवल पुरुष है वहभी प्रकृति के नाच को देखकर उससे उपराम होजाताहै तैसे प्रकृतिभी कहती है एक जो केवल शुद्ध पुरुष है तिसकरके मैं देखी गईहूं अर्थात् मेरे कुटिलपनेको पुरुषने जान लियाहै ऐसे जानकरके प्रकृतिभी तिस पुरुषसे उपराम होजाती है फिर तिसके समीप नहीं आती है वह प्रकृति एक है और तीनों लोकोंकी उत्पत्ति का कारण है तिस एक से और कोई दूसरी नहीं है ॥ प्र० ॥ मूर्त्तिके भेदसे और जाति के भेदसे अर्थात् प्रकृतिकी व्यक्ति याने मूर्त्ति भिन्नहै और पुरुषकी मूर्त्ति भिन्न है प्रकृति में प्रकृतित्व जातिभेदक है पुरुषमें पुरुषत्व जातिभेदक है इसरीतिसे दोनों का भेद है भी तथापि दोनों को व्यापक कहा है व्यापक होनेसे तिनका संयोग तो बनाही है और संयोगही सृष्टिका कारणहै तब फिर भी सृष्टिहोनी चाहिये सृष्टिके न होनेमें क्या कारण है ॥ उ० ॥ यद्यपि भेद ज्ञान होनेपर उन दोनों को व्यापक होने से तिनका संयोग बनाभी है तब भी फिर सृष्टि नहीं होती क्योंकि सृष्टि करनेका प्रयोजन फिर नहीं रहा है,

जैसे एक पुरुषने दूसरेका ऋण देना जबतक वह ऋण नहीं देता तबतक उनका झगड़ा होता है जब वह ऋणको देदेता है तब फिर दोनों परस्पर मिलते भी हैं तबभी उनका परस्पर वादविवाद नहींहोता किन्तु दोनों उदासीन की तरह परस्पर रहते हैं इसी प्रकार भेदज्ञानके अनंतर प्रकृति पुरुषका संयोग होताभी है दोनों को व्यापक होनेसे तबभी सृष्टि नहीं होती क्योंकि सृष्टि करनेका प्रयोजन फिर नहीं रहा है ॥ ६६ ॥ प्र० ॥ प्रकृति यदि ऐसा कहे पुरुषकी मुक्ति होतीहै ज्ञानकी उत्पत्ति से हमारी क्यों नहीं होती तब फिर इसका क्या उत्तर है ॥ उ० ॥

मूल ॥

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ॥
तिष्ठतिसंस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद्धृतशरीरः ॥ ६७ ॥

अन्वय	पदार्थ
सम्यग्ज्ञानात्	= यथार्थ आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेपरभी
धर्मादीनां	= धर्मादिकोंकी
अकारणप्राप्तौ	= विना कारणके प्राप्ति होनेपरभी
संस्कारवशाच्च	= चपुनः संस्कारोंके वश्यसे
धृतशरीरः	= शरीरको धारण करताहुआ योगी
तिष्ठति	= स्थिर रहता है
चक्रभ्रमवत्	= कुलालके चक्रके भ्रमणकी तरह ॥

भावार्थ

यद्यपि पंचविंशति तत्त्वोंके ज्ञानका नामही सम्यग्ज्ञानहै ॥ तथापि संस्कारों के वश्यसे योगी शरीरको धारण करताहुवा स्थितही

रहता है कैसे रहता है चक्रके भ्रमणकी तरह अर्थात् जैसे कुलाल चक्रको भ्रमाकर मृत्पिंड को तिसपर धर करके घटको बना लेताहै और घटको बनाकर चक्रको त्याग भी देता है तब भी वह अपने वेगकरके कुछ देरतक भ्रमताही रहताहै इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होनेपर भी संस्कारोंके वश्यसे यदि पुनः विनाही कारण के धर्मादि को प्राप्त हो भी जावै तबभी वह बन्धन को नहीं करसक्ते हैं क्योंकि वह सप्तरूप जो धर्मादिक कहे हैं वह आत्मज्ञान करके दग्ध होजाते हैं जैसे अग्नि करके भूजे हुवे बीज फिर अंकुर को उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं तैसेही ज्ञान करके दग्ध हुवे धर्मादिक भी फिर जन्म मरण का हेतु नहीं होसक्ते हैं यदि कहो ज्ञान करके वर्त्तमान धर्म अधर्मादिकों का नाश क्यों नहीं होता है सो ज्ञानी के दूसरे क्षणमें नाश होजाते हैं भोग देकर और आगामि संचित ज्ञान करकेही दग्ध होजातेहैं अर्थात् प्रारब्ध कर्मोंसे अतिरिक्तकर्म तो ज्ञानकरके दग्ध होते हैं और प्रारब्ध कर्मका नाश भोग करके होजाता है ॥ और शरीरपात से अनंतर फिर ज्ञानीका जन्म नहीं होताहै ॥ ६७ ॥

मूल ॥

प्राप्तेशरीरभेदेचरितार्थत्वात्प्रधानविनिवृत्तौ ॥
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयङ्कैवल्यमाप्नोति॥६८॥

अन्वय पदार्थ

शरीरभेदे = शरीर के नाश
प्राप्ते = प्राप्त होने पर
चरितार्थत्वात् = कृतकृत्य होने से

प्रधाननिवृत्तौ = प्रधानकी निवृत्ति होजाती है
ऐकान्तिकं = अवश्यही
आत्यंतिकं = नित्य
उभयं = दोनों प्रकार की
कैवल्यं = कैवल्य को
प्राप्नोति = प्राप्त होताहै

भावार्थ

जिस कालमें ज्ञान की प्राप्ति होती है तब धर्म अधर्म का कारण जो संस्कार वह नाश होजाते हैं फिर शरीरपात होनेपर ज्ञानी को चरितार्थ होनेसे याने कृतकृत्य होने से प्रधानकी भी निवृत्ति होजाती है तब फिर एकांतिक अवश्य और नित्य उभयरूप मुक्ति ज्ञानीको प्राप्त होती है ॥ ६८ ॥

मूल ॥

पुरुषार्थज्ञानमिदंगुह्यंपरमर्षिणासमाख्यातम् ॥
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्तेयत्रभूतानाम्॥६९॥

अन्वय पदार्थ

पुरुषार्थज्ञानं = मोक्ष का साधनरूप ज्ञान
इदं = यह जो कहाहै
गुह्यं = बड़ा गुह्य है
परमर्षिणा = कपिलजी ने
समाख्यातं = कथन कियाहै
यत्र = जिस ज्ञान में
भूतानां = भूतों की

स्थित्युत्पत्तिप्रलयाः = स्थिति उत्पत्ति प्रलयका
चिंत्यन्ते = चिंतन करते हैं

भावार्थ

पुरुषार्थ नाम मोक्षकाहै तिस मोक्ष के लिये पूर्वोक्त गुह्य ज्ञान सारभूत परमऋषि कपिलदेवजी ने कथन कियाहै जिस ज्ञान में विकारी याने कार्यरूप भूतोंकी स्थिति उत्पत्ति प्रलयका भी चिंतन किया है और जिनके विचार करने से भली प्रकार से पंचविंशति तत्त्वों के ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ कपिल मुनि करके कथन किया जो सांख्य है सो जीवोंको संसारबंधनसे छुड़ाने वाला है तिसपर गौड़पादाचार्य्यका भाष्य है बहुतही सुगम किया हुवाहै ॥ ६९ ॥

मूल ॥

एतत्पवित्रमग्र्यंमुनिरासुरयेऽनुकंपयाप्रददौ ॥
आसुरिरपिपंचशिखायतेनचबहुधाकृतंतन्त्रम् ७०

अन्वय पदार्थ

एतत् = ये सांख्य शास्त्र जो
पवित्रं = अति पवित्र है
अग्र्यं = सब शास्त्रों में मुख्य
मुनिः = मुनि जो कपिल
अनुकम्पया = कृपा करके
आसुरये = आसुरि के प्रति
प्रददौ = देते भये
आसुरिः = आसुरिभी
अपि = निश्चय करके
पंचशिखाय = पंचशिखा के प्रति
ददौ = देते भये

तेन = तिस पंचशिखा ने	तंत्रम् = शास्त्र को
बहुधा = बहुतप्रकार से	कृतम् = विस्तार किया

भावार्थ

इस पवित्र और सब ज्ञानों में प्रधान पञ्चविंशति तत्त्वोंके ज्ञान को जो कि मोक्षका परमसाधन है इस ज्ञानको प्रथम सबसे पहले आसुरिऋषिके प्रति देते भये आगे आसुरिऋषिने पंचशिखामुनि को दिया तिस पंचशिखामुनिने इसका विस्तार करके अनेक ग्रंथ सांख्यशास्त्रके बनाये ॥ ७० ॥

मूल ॥

शिष्यपरम्परयागतमीश्वरकृष्णेनचैतदार्याभिः ॥
संक्षिप्तमार्यमतिनासम्यग्विज्ञायसिद्धान्तम् ॥७१॥

अन्वय पदार्थ

शिष्यपरम्परया = शिष्यपरंपरा करके
गतं = प्राप्त हुआ ईश्वर कृष्ण को
ईश्वरकृष्णेनच = चपुनः तिस ईश्वर कृष्णने
आर्य्यमतिना = आर्य्यमति के
एतत् = पूर्वोक्त शास्त्र को
आर्य्याभिः = आर्य्याछन्द में
संक्षिप्तं = संक्षेपसे
सिद्धांतं = सिद्धांत को
विज्ञाय = जानकरके
कृतम् = किया

भावार्थ

पूर्वोक्त पचीस तत्त्वों के ज्ञान का जो सांख्य शास्त्रहै सो शिष्य परंपरा करके ईश्वर कृष्णको प्राप्त हुआ तिस ईश्वर कृष्णने इसको आर्य्याछन्दमें संक्षेप से निरूपण किया कैसे हैं ईश्वर कृष्ण जो श्रेष्ठ बुद्धिवाले हैं उन्हों ने इसके सिद्धांत को जानकरके विस्तारसे इसका निरूपण किया ॥ ७१ ॥

मूल-सप्तत्यांकिलयोऽर्थास्तेऽर्थाःकृत्स्नस्यषाष्टितन्त्रस्य। आख्यायिकाविरहिताःपरवादविवर्जिताश्चापि ॥ ७२ ॥

अन्वय	पदार्थ
सप्तत्यां	सत्तर कारिकामें
किल	निश्चय करके
योऽर्थाः	जो अर्थ है
तेऽर्थाः	सोअर्थ
कृत्स्नस्य	सम्पूर्ण
षष्टि	साठ
तन्त्रस्य	तत्त्वों का तात्पर्य
आख्यायिकाविरहिताः	कथाप्रसंगसे रहित
परवादविवर्जिताश्चापि	निन्दासेरहित कथन कियाहै

भावार्थ

इस ग्रन्थ में साठ तत्त्वों को कथन किया है संक्षेपसे सत्तरकारिकामें ईश्वरकृष्णने निरूपण कियाहै परंतु तिसमें आख्यायिका जो कथाहैं तिनका निरूपण नहींहै और किसीकी निंदा भी नहीं

है और न किसीका खंडन मण्डन है किंतु केवल पचीस तत्त्वोंके ज्ञानका निरूपणहै जोकि सब जीवों की मोक्षकाकारकहै ॥ ७२ ॥ इस सत्तर ईश्वर कृष्णरचित कारिका पर स्वामि गौड़पादाचार्य्य जी ने संस्कृत में भाष्य किया है सो तिस भाष्यको इन कारिका की उत्तम टीका जानकर मेरे मनमें भी इच्छाहुई जो इसपर अर्थात् इसी गौड़पादाचार्य के भाष्यकी भाषामें एकटीका सुगम करूं सो मैं अर्थात् मैं जो जालिमसिंह हेडपोस्टमास्टर नैनीतालमें बहुत बरसोंसे रहताहूं संवत् १९५६में स्वामि परमानंद परमहंस काशी-निवासी बैशाख बदि पैलीको मेरे पास आकर जबरहे तब मैंने उनसे आज्ञालेकर इसकी भाषा में टीका का प्रारंभ किया सो इसी संवत् में आषाढ़ बदि दूजको सब तय्यार होगई और सांख्यतत्त्व-सुबोधिनी इसका नाम रक्खागया ॥

दोहा ॥

चित्रगुप्त ममवंश है भरद्वाज है गोत्र ॥
जालिमसिंहहिकहतहैं सुनै सबनके श्रोत्र १
शिवदयाल ममजनकहैं इच्छासिंहकोसुत ॥
प्रतापसिंह सुततासुको रहैसकलको विदित २
संतसभाके अग्रमें विनयकरूं करजोर ॥
यद्यपि असंगतह्वै कछु दीजैदोष न मोर ३
ज्यौंअब्धि जलजायकै वारदमाधुरहोय ॥
त्यौंसंतनमुख जायके दूषण भूषण होय ४

श्रीमत्बाबूजालिमसिंहविरचिता सांख्यतत्त्वसुबोधिनी नामक भाषाटीका समाप्ता ॥

मिताक्षरा सटीकका विज्ञापनपत्र ॥

संसार में मर्यादा स्थित रखने के अभिप्राय और सर्वसाधारण के उपकार दृष्टिसे भगवान् याज्ञवल्क्यने अनेकप्राचीन आचार्यों और महर्षियोंके मतलेकर मिताक्षरानामक धर्मशास्त्र " आचार " " व्यवहार " और " प्रायश्चित्त " नामक तीनभागों में निर्माण कियाथा यह " याज्ञवल्क्य स्मृति " भारतवासीमात्र चतुर्वर्णोंका मुख्य धर्मशास्त्र है और इसी के अनुसार यहांके निवासियों के धर्मसम्बन्धी समस्तकार्य होते चलेआते हैं ॥

आचाराध्याय नामक प्रथमखण्ड में गर्भाधानसे लेकर मरण पर्यन्तके समस्त संस्कार चतुर्बर्णों और विविध जातियों की उत्पत्ति ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णों और ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रमों के धर्माचरण,साधारण शिक्षा,आठप्रकारके बिवाहोंके लक्षण,भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों का विवेक, दान लेने देने की विधि, सर्वप्रकार के श्राद्धोंका निर्णय, नवग्रहों की शांति,राजाओं के धर्म आचारादि अनेक बिषय विस्तारपूर्बक वर्णन किये गये हैं ॥

"व्यवहारकाण्ड" में न्यायसभानिरूपण, सबप्रकारके दीवानी और फौजदारी मुक़द्दमों के निर्णय करने की विधि,भूमिसम्बन्धी झगड़ोंका बिस्तार,ऋणलेने, देने, गिरवीरखने और ब्याज लगाने की विधि, धरोहर का बिवाद, साक्षियों के सत्यासत्यका विचार और दण्ड, दस्तावेजों का विचार, खरे खोंटे और कमतौल वस्तुओंका विचार, विषदेनेवाले का विचार, नातेदारी का बृत्तांत, हिस्साबांटकी विधि, संस्कारविहीन भाई--बहिनों के संस्कारके अधिकार और और बिधि, २२ प्रकारके पुत्रों का वर्णन, वारिस होनेका विचार, दत्तक लेनेकी विधि, स्त्रीधन और कन्याधनका

निर्णय, सीमाके झगड़ोंका निपटारा, पशुव्यतिक्रमविचार, परधन, परस्त्रीहरण आदिका विचार, देय अदेय दानों का विचार, वस्तु क्रय विक्रय बिचार, सेवाधर्म बिचार, राजसम्बन्धी गूढ़संवित समय सङ्केतों के व्यतिक्रमका विचार, वेतन, मजूरी, किराया आदि विषयक झगड़ोंका बिचार, जुवारी आदि दुराचारियों का विचार, गाली, गलौजतथा मार, पीटका बिचार, चोर, डाकू, लुटेरे आदिकों का बिचार और नाना अपराधों और कुकर्मों तथा राजाश्रय नाना व्यवहारोंका अति विस्तारपूर्वक वर्णन है ॥

प्रायश्चित्तकाण्ड में जलदानप्रकार व अशौच सूतक दिनावधि कथन व सद्यःशौच व्यवस्था जगदुत्पत्ति प्रपञ्च विस्तार व बुद्ध्यादिसमवाय व प्रायश्चित्तकरणदोष व नरकादिनामरूप व अतिपातक और पातकादिलक्षणभेद व सकाम सुरापानादि महापातक प्रायश्चित्तकथन व स्वर्णापहारादि प्रायश्चित्त व अवकृष्टवध प्रायश्चित्त कथन और प्रत्येक बातों के स्वरूप व नियमादि वर्णन कियेगये हैं परन्तु यह विस्तृतग्रन्थ संस्कृतमें होनेके कारण सर्वसाधारण के देखनेमें न आताथा इसकारण भारतबासीपुरुषों के उपकारार्थ यन्त्रालयाध्यक्ष श्रीमान् मुन्शी नवलकिशोरजी ने बहुतसा धन पारितोषिक की रीतिपर देकर आगरानिवासी मर्यादाप्रिय पण्डित दुर्गाप्रसाद शुक्लसे सरलसाधारण भाषामें अनुवादकराय स्वयन्त्रालय में मुद्रितकराया आशा है कि जो कोई मर्यादाप्रियपुरुष इसको दृष्टिगोचर करेंगे वह प्रसन्नहोकर इसको ग्रहण करेंगे और यन्त्रालयाध्यक्ष को धन्यबाद देंगे--

---